Shri Lalitamba Shatakam or Shakti Mahimna Stotram

श्रीललिताम्बाशतकं अथवा शक्तिमहिम्नस्तोत्रम्

Document Information

Text title : Lalitamba Shatakam

File name : lalitAmbAshatakam.itx

Category : devii, devI, lalitA, shataka

Location : doc_devii

Author : Krishnachandra Shastri

Proofread by : Brahatha Mohan

Latest update : August 7, 2026

Send corrections to : sanskrit at cheerful dot c om

This text is prepared by volunteers and is to be used for personal study and research. The file is not to be copied or reposted without permission, for promotion of any website or individuals or for commercial purpose.

Please help to maintain respect for volunteer spirit.

Please note that proofreading is done using Devanagari version and other language/scripts are generated using **sanscript**.

August 8, 2026

sanskritdocuments.org

श्रीललिताम्बाशतकं अथवा शक्तिमहिम्नस्तोत्रम्

आचार्य पं. डॉ कृष्णचन्द्र शास्त्रिणा विरचितं
सम्पादिका -श्रीमती कुसुम शास्त्री
सौजन्य - श्री भृगुवेद् वेदांग शोध शिक्षा समिति

प्राक्कथन

समस्त लोकों में शक्ति का ही विलास है शक्ति ही सृष्टि है । यह काली जो शिव पर खड़ी है वह शिव का ही सृजनात्मक स्वरूप है । इसको ही शक्ति कहते हैं । जब शिव शक्ति से युक्त होता है तभी वह समस्त लोकों की रचनादि कार्यों को करने में समर्थ होता है । शक्ति के बिना शिव शव मात्र हो जाता है -उसमें स्पन्दन मात्र की क्रिया भी शक्ति के बिना नहीं हो सकती ।

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥ -सौन्दर्यलहरी
शिव की क्या बात ? हम सब भी शक्ति के बिना हिल-दुल भी नहीं सकते । अतः सिद्ध है कि हम सब शक्ति के इच्छुक हैं । उसके पुजारी हैं । विशेष रहस्य यह है कि शिव ही शक्ति है और शक्ति ही शिव है परब्रह्म की निष्क्रिय एवं शान्त अवस्था का नाम “शिव” है तथा उसकी सक्रिय साकार अवस्था का नाम शक्ति है, ये दोनों एक ही परब्रह्म की दो अवस्थाएं है । अतः जब तक शक्ति प्रदर्शन है तब तक विविध लोकों की सृष्टि के क्रिया कलाप हैं अन्यथा वह परमात्मा निराकार - शान्त एवं आत्माराम है ।

शक्ति के विविध रूप हैं । सामान्य जन व्यक्ति की पूजा न करके उसकी शक्ति की ही पूजा करते हैं । उसकी शक्ति की ही अधीनता स्वीकार करते हैं । यह लोक सिद्ध है । अलौकिक मार्ग में पैठ बनाने के लिए भी भक्त विभिन्न स्वरूपों में एकमात्र उस शक्ति की ही उपासना करते हैं । फिर चाहे उसको काली -दुर्गा -लक्ष्मी-सरस्वती आदि कितने ही नामों से पुकारो या राम-कृष्ण-गणेश आदि रूपों में उसका भजन

करो । ये सब शक्ति का ही विलास है, उसका ही स्वरूप है । कामना एवं सम्प्रदाय भेद से सब वही है । जैसे सभी कार्यालयों एवं विभागों में एकमात्र सरकार ही विविध रूपों में कार्य करती है ।

तो प्रश्न उठता है कि शक्ति के स्वरूपों का मूल स्वरूप कौन सा है ? इसका उत्तर वैदिक साहित्य में स्वयं देवी ने दिया है कि मैं ही रूद्र, वसु, आदित्य, विश्वदेव आदि के रूप में विचरण करती हूँ ।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहमादित्यैरूत विश्वदेवैः ।
ऋ.१०.१२५
एषा श्री महाविद्या
यह "श्री विद्या" ही है जो समस्त स्वरूपों का मूल एवं सर्वश्रेष्ठ है इसको बालात्रिपुरसुन्दरी, ललिताराजराजेश्वरी षोडशी आदि नामों से व्यवहृत किया जाता है । देवी स्वयं कहती है -लौकिक देवों से विष्णु का नाम गुणगान श्रेष्ठ है, विष्णु के १००० नामों से शिव का एक नाम श्रेष्ठ है । शिव के हजार नाम से देवी का एक नाम श्रेष्ठ है । देवी के भी विविध नाम स्वरूप है उनमें से दस प्रकार के विशेष नाम श्रेष्ठ हैं । उनमें से भी ललिता देवी का एक नाम सर्वोपरि है यही श्री विद्या है

लौकिकाद् वचनाद् मुख्यं विष्णुनामानुकीर्तनम् ।
विष्णुनामसहस्राच्च शिवनामैकमुत्तमम् ॥

शिवनामसहस्राच्च देव्या नामैकमुत्तमम् ।
देवीनाम सहस्राणि कोटिशः सन्ति कुम्भजः ॥

तेषु मुख्यं दशविधं नामसाहस्रमुच्यते ।
न कश्चिदपि लोकेषु ललितानामतत्परः ॥ -ललिता०
माताश्री कहती हैं कि जिसने करोड़ों जन्मों तक अन्य श्रेष्ठ देवों के नाम का गुणगान किया हो उसी की श्रद्धा देवी के नाम व उपासना में होती है । देवियों के नाम जपते-जपते भी जब माता किसी भी रूप में प्रसन्न हो जाती है तब "श्री विद्या" की उपासना का अधिकार मिलता है । अधि क क्या कहूँ अन्तिम जन्म में ही ललिता देवी की उपासना और श्री विद्या का अधिकारी जीव हो पाता है । अर्थात् श्री विद्या में दीक्षित होने के बाद व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता । वह देवी के सायुज्य का अधिकारी हो जाता है ।

येनान्यदेवतानामकीर्तितं जन्मकोटिषु ।

तस्यैव भवति श्रद्धा श्रीदेवीनामकीर्तने ॥

चरमे जन्मनि यथा श्रीविद्योपासको भवेत् ॥

ब्र. पुराण. ललिता० ।

स्वरूप

अमृत समुद्र के मध्य कल्पवृक्षों की वाटिका से घिरा मणिद्वीप पर चिन्तामणि गृह में ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र -ईश्वर चार पायों से युक्त सिंहासन पर, सदाशिव है जिसका फलक ऐसे मञ्च पर आप विराजमान हैं -

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवतिचिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यंकनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन् चिदानन्दलहरीम् ॥ -सौन्दर्य०

आप सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सर्वसमर्था हैं । जिसको चाहो उसको ब्रह्मा-विष्णु या शिव पद प्रदान कर सकती हैं -

यं यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधां -ऋग्.

माँ ललिता ने ही श्री कृष्ण के रूप में अवतार ग्रहण किया था -

ममैव पौरुषं रूपं गोपिकाजनमोहनं -ब्रह्मवै. पुराण
अहं च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः
अहं च ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहाः -पद्मपुराण

उमा ही विष्णु है - या उमा सा स्वयं विष्णुः - रूद्रहृदयोपनिषद् औपनिषदिक ललितोपाख्यान से ज्ञात होता है कि माँ ललिता अग्नि, वायु, इन्द्रादि देवों की भी माता -पिता स्वरूपिणी है । ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवों की पूजा भी ललिता देवी के चरणों के ध्यान मात्र से ही हो जाती है । क्योङ्कि ये माता के चरणों में ही सिर झुकाए आज्ञा पालन में खड़े रहते हैं ।

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे ।
भवेत् पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता ॥

तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे ।
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमुकुटाः ॥ सौन्दर्य ।

श्री विद्या व गायत्री एकरूपात्मक ही है । गायत्री प्रकट विद्या है तथा श्री विद्या गुप्त विद्या है -त्रिपुर तापिन्योपनिषद्/वरिवस्या रहस्यम् ।

श्री विद्या अपनी आत्म विद्या की ही उपासना है । यह भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करती है । अन्य देवता केवल भोग ही प्रदान कर सकते हैं ।

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षो
यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः ।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव ॥

श्री विद्या का मन्त्र पञ्चदशी या षोडशी मन्त्र के नाम से विख्यात है । इस विद्या के १२ प्रवर्तक विशिष्ट हैं - मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामदेव, अगस्त्य, नन्दी, सूर्य, विष्णु, स्कन्द, शिव और ऋषि दुर्वासा -

मनुश्चन्द्रश्च कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ।
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा ।
क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशामी उपासकाः ॥ -मन्त्रमहो.

कहीं नन्दी व विष्णु के स्थान पर अग्नि व इन्द्र का नाम भी मिलता है - श्री विद्यार्णव
इनके पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय थे सम्प्रति लोपामुद्रा एवं कामदेव सम्प्रदाय
ही मिलता है । इसमें कादि तथा हादि विद्या का प्रचार मुख्य है । श्री विद्या वैदिक विद्या है । आचार्य लक्ष्मीधर निम्न ऋचा में श्री विद्या का सङ्केत करते हैं ।
चत्वारि ई बिभ्रति क्षेमयन्तो ऋग्. ५.४७.४
तैत्तिरीय संहिता-ब्राह्मण-आरण्यक एवं देव्युपनिषद् में मन्त्रस्वरूप स्पष्ट है ।

भगवान शङ्कराचार्य ने इस विद्या का प्रचार प्रसार किया । उनके द्वारा स्थापित चारों पीठों में आज भी श्री यन्त्र एवं श्री विद्या की अनवरत उपासना चली आ रही है ।

हयग्रीव, अगस्त्य, दत्तात्रेय, परशुराम, गौड़पाद, शङ्कराचार्य, भास्करराय, उमानन्दनाथ, करपात्री जी, अमृतानन्द नाथ आदि आचार्यों ने श्री विद्या के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

श्रीयन्त्र श्रीविद्या का मूल यन्त्र है । जो ब्रह्माण्ड का ही स्वरूप है । शरीर में यह कुण्डलीनी विद्या चक्र का स्वरूप है ।

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा -
ऋग्वेद ।

यह विद्या बड़े ही सौभाग्य से मिलती है । श्रीविद्योपासक स्वयं शङ्कर होता है । जिसने अनेक जन्मों में अनेक विद्याओं की उपासना की है । वही चरम जन्म में श्री विद्या का उपासक होता है ।
यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शङ्करः स्वयम् ।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी ॥ ब्र. पु ।
श्रीविद्या के जानकार के लिए ही विद्वान् शब्द प्रयुक्त होता है । अन्य के लिए नहीं ।
न शिल्पादिज्ञानयुक्ते विद्वच्छब्दः प्रयुज्यते ।
तस्माद्विद्याविदेवात्र विद्वान् विद्वानितीर्यते ॥ ब्र. पु ।
श्रीविद्या सम्प्रदाय में दीक्षित समस्त न्यासादि से सम्पन्न व्यक्ति देव स्वरूप हो जाता है । वह यदि अदीक्षित को नमस्कार करे तो सामने वाली को आयु कम हो जाती है । अतः दीक्षित सबके लिए प्रणम्य है ऐसा शास्त्र कहते हैं ।

देवी स्वयं कहती है कि राज्य दे दे, अपना सिर दे देवे परन्तु यह महाविद्या ऐसे वैसे व्यक्ति को न प्रदान करे -
राज्यं देयं शिरो देयं
न देया षोडशाक्षरी
स्वमातृयोनिवद् गोप्या
विद्यैषा इत्यागमा जगुः - ब्र. पु. ललिता०

शिव के मुख से निकले ६४ तन्त्र मूलतः अवैदिक है तब शिव ने देवी के आग्रह पर वेद सम्मत इस शुद्ध सात्त्विक देवी के तन्त्र की रचना कि जो श्रीविद्या के नाम से प्रसिद्ध है–
चतुःषष्ठ्या तन्त्रै—-इदम् ॥ सौन्दर्य०

श्रीविद्या का प्रतिपादन करने वाले कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं । जिनमें ब्रह्माण्ड-पुराण श्रीविद्यारत्नसूत्र (श्री गौड़पाद रचित)सुभोगदयस्तुति (श्री गौड़पाद रचित)श्री परशुरामकल्पसूत्र (परशुराम रचित)श्रीविद्यार्णव तन्त्रं, सौन्दर्यलहरी, योगिनी हृदयं इत्यादि प्रमुख हैं ।

सङ्केतविद्यागुरुवक्त्रगम्या समस्त विद्याओं में प्रवेश गुरुमुख से ही करना चाहिए । सद्गुरु के कुल से उसकी कृपा से प्राप्त यह विद्या समस्त कामनाओं को पूर्ण करती है । बिना गुरु कृपा से अपनी बुद्धि मात्र से उत्पन्न होने पर यह विद्या अपनी कन्या को भोगने के समान पाप उत्पन्न करती है ।

सद्गुरुकुलतः कृपया लब्धा कामानियं सूते ।
निजबुद्धिमात्रजन्या पापं कन्या यथा स्वीया ॥

भास्कर २.१६५

सद्गुरु से दीक्षा लेकर ही जप तपादि में प्रवृत्त हो तभी विद्या सफल होगी ।
दीक्षा मूलं जपं सर्वं दीक्षा मूलं परं तपः ।
आध्यात्मिक साधनाओं में मेरा लगाव बचपन से ही रहा है माँ सरस्वती मुझ पर जन्मतः प्रसन्न रही है । तन्त्र, ज्योतिषादि गुह्य, विषयों का गहन अवगाहन करते है भगवती की उपासना मैं अध्ययन काल से करता रहा हूँ । और भगवती राजराजेश्वरी ललिताम्बा का कृपा प्रसाद पग-पग पर गोचर होता रहा है । परम पूज्य गुरुदेव श्री जयराम जी महाराज (मध्य प्रदेश)जी से श्री विद्या में दीक्षित होकर इस पथ पर परम लक्ष्य प्रत्यक्ष ही प्रतीत हो रहा है । माँ की प्रेरणा हुई कि श्री पुष्पदन्त विरचित शिवमहिम्नस्तोत्र तो त्रिलोक में देदीप्यमान है क्यों न उनकी आत्मभूता शक्ति की स्तुति में शक्तिमहिम्नस्तोत्र लिखा जाए । माँ ललिताम्बा के प्रसाद स्वरूप ही दिव्य भाव श्लोकों का रूप कब लेते गए, इसका पता ही न चला । वही इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति व क्रिया शक्ति है । इस स्तोत्र के लेखन का सारा श्रेय उन्हीं को समर्पित है । यह स्तोत्र दिव्य एवं माँ का कृपा प्रसाद है इसके प्रमाण स्वरूप दो घटनाएं स्मरणीय हैं -

क) स्तोत्र पूर्णता की ओर था एक श्लोक के एक शब्द के सार्थक प्रयोग पर एक मित्र ने सन्देह प्रकट किया तब मन में यही रहा की शायद इस शब्द का यहाँ प्रयोग सही न हो ? इस ऊहापोह में एक ग्रन्थ के एक प्रसङ्ग पर दृष्टि पड़ी जिसमें एक ब्राह्मण को प्रातः काल एक संस्कृत श्लोक का दर्शन हुआ उठकर उन्होन्ने उस श्लोक को लिख लिया फिर अर्थ का चिन्तन किया तो एक शब्द पर शङ्का हुई कि शायद यह शब्द ठीक नहीं है । इस चिन्तन में ब्राह्मण लगा था तभी उसके कक्ष में एक दिव्य पुरूष प्रकट हुआ और बताया कि यह शब्द सही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । श्लोक में कोई कमी नहीं है ।

जब मैंने यह प्रसङ्ग पढ़ा तब मेरे भी मन में आया कि मुझे भी कोई दिव्य पुरूष दर्शन देकर मेरी समस्या का समाधान कर सकता है ? ऐसा सोचते-सोचते एक ग्रन्थ का एक पृष्ठ खुल गया और मैंने देखा कि वही विवेचित शब्द उसी अर्थ में इस ग्रन्थ में प्रयुक्त हुआ है जो अपनी सार्थकता को प्रमाणित करता है । यह शब्द शङ्कराचार्य विरचित प्रसिद्ध तन्त्र ग्रन्थ सौन्दर्य लहरी के एक श्लोक में गुम्फित था

। इस प्रकार दैवी कृपा से ही समाधान मिला ।

ख)स्तोत्र का संशोधन चल रहा था तब एक रात स्वप्न में एक दिव्य मन्दिर एवं महात्मा के दर्शन हुए । उन्होन्ने मुझे स्नेहपूर्वक अपने पास बैठाया और बताया कि इस मठ की परम्परा के आचार्यों में मैं ५०० वें स्थान पर अभिषिक्त हूँ । फिर उस महापुरूष ने मेरी झोली में ५ फल डालें और मैंने देखा कि माँ राजराजेश्वरी ने भी दो फूल मेरी झोली में डाले । नेत्र खुले और नित्यकर्म में माँ की प्रेरणा से संलग्न हो गया ।

स्तोत्र पूर्ण हुआ और आपके हाथों में हैं । यह किसी प्रोढ़ कवि की रचना नहीं है क्योङ्कि मेरे माता -पिता “मसि कागद छुओ नहीं कलम गह्यो नहि हाथ” नामक सम्प्रदाय से है । स्वान्तः सुखाय भणिति से भरा यह स्तोत्र देवी के द्वारा ही लिखा गया है और देवी को ही समर्पित है-

ग्रन्थ में व्याकरण सम्बन्धित विशिष्ट परामर्शों के लिए डॉ अनिल वत्स (करसोला)को विशेष साधुवाद ।

-डॉ कृष्ण चन्द्र शास्त्री

गुरुस्मरण

परम पूज्य सद्गुरुदेव आचार्य श्री जयराम जी महाराज का सङ्क्षिप्त जीवन परिचय

पूज्य आचार्य श्री जयराम जी महाराज सनातन संस्कृति के रक्षक कर्मयोगी सन्तों में अपना प्रमुख स्थान रखते है । मानव मात्र क्या जगत के हर जीव के कल्याण की भावना आप में प्रभु प्रदत्त है । भगवान ध र्म संस्कृति की रक्षा हेतु किसी न किसी को निमित्त बनाकर स्वयं कार्य करा लेते है ।

मध्य प्रदेश के सतना मण्डलान्तर्गत सिद्ध सारदा पीठ मैहर के समीपस्थ रमपुरवा धाम में कुलीन ब्राह्मण परिवार में १८ मई १९५८ को मध्याह्न जन्मे आचार्य श्री के पूज्य पिता श्री रामसजीवन दुबे एवं पूज्या माता श्रीमति रामबाई ने ऋषि परम्परा का जीवन जीते हुए वैदिक परम्परा की रक्षा की । आपके वंश परम्परा में पाञ्चवी पीढ़ई से गृहस्थ ध र्म का पालन कर सन्त परम्परा में प्रवेश करने की प्रणाली का निर्माण आचार्य श्री कर रहे है । वैष्णव कुल परम्परा के गौरव महाराज श्री ने प्रारम्भिक शिक्षा जन्म भूमि में प्राप्त की । मैहर, खजुरीताल, जबलपुर, प्रयाग व वाराणसी आदि स्थलों में विद्याध्ययन किया । खजुरीताल के पूज्यपाद अनन्त श्री विभूषित महन्त श्री रामप्रिय दास जी महाराज जिनके विशेष सत् प्रेरणा और आशीर्वाद

से आचार्य श्री ने समाज सेवा में प्रवेश किया । उनके प्रति अपने आप को कृतज्ञ मानते है । वाराणसी में शिक्षा ग्रहण के साथ-साथ पूज्य आचार्य श्री ने १९७९ में दिल्ली में प्रवेश किया एवं १९८० में अखिल भारतीय ललिताम्बा शक्ति समिति की स्थापना की । समिति की स्थापना के साथ -साथ आपने भारत के विभिन्न सन्त महापुरूषों द्वारा योग शिक्षा प्राप्त की । सन् १९८० में ही आँल इण्डिया योग शिविर में प्रथम श्रेणी प्राप्त कर वर्तमान समय के राष्ट्र योग गुरु धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जो इन्दिरा गाँधी के गुरुदेव थे उनके सानिध्यता में अनेक योग शिविरों द्वारा योग का प्रचार-प्रसार किया तथा पूज्य महर्षि महेश योगी की सानिध्यता भी प्राप्त की सन् १९८५ से ध र्म संस्कृति की रक्षा हेतु समस्त जन-मानस कल्याणार्थ व वैदिक परम्परा की रक्षा हेतु अनेको यज्ञ एवं भक्ति योग वेदान्त, सन्त सम्मेलनों को सम्पन्न किया । सन् १९९० से अनेक आश्रमों की स्थापना की, जिसमें ललिताम्बा महाशक्ति पीठ रमपुरवा धाम, आचार्य श्री जयराम आश्रम वृन्दावन, श्री ललिताम्बा निकेतन आश्रम हरिद्वार, आचार्य श्री जयराम आश्रम चित्रकूट, श्री ललिताम्बा योगाश्रम शिव मन्दिर बदरखा, श्री ललिताम्बा तपो भूमि आश्रम सुखवीर नगर दिल्ली प्रमुख है । वेद वेदाङ्ग की रक्षा हेतु संस्कृत विद्यालय, शिशु विद्यालय, बाल विद्यालय, आदर्श विद्यालय व गौरक्षा हेतु ललिताम्बा गौशाला का निर्माण आपके द्वारा सम्पन्न कराए गये है ।

- आचार्य पं। डॉ कृष्ण चन्द्र शास्त्री

सम्पादकीय

पूज्य गुरुदेव (ग्रन्थकार)जी ने माँ पराम्बा की स्तुति में दिव्य शतक का निर्माण किया । यद्यपि मैं विदुषी तो नहीं हूँ तथापि यथामति श्लोकों का भाव आपके सामने प्रस्तुत है ताकि माँ के भक्तों को भाव बोध का अमृतपान कराया जा सके । प्रस्तुत ग्रन्थ में भाव -भाषा -और भक्ति का अपूर्व सङ्गम है । निम्न कुछ अंशों से पाठक स्वयं ग्रन्थ के भाव-कला व भक्ति को सुलभता से समझ सकेङ्गे -

महाकाली काली मम मनसि गौरी इति मता
तदा गौरी द्वारा मधुमधुरगोपः प्रकटितः ।
अनन्ताया भक्त शिशुघनरवश्शक्रमजयत्
असृग्बीजो नीर्बीजमलभत दुर्गे ! तव कृपा ॥

मधुप्रेमालापैर्विषमविषमुत्तारयति सा
यथालोकारोहः पथि भवति दीपं प्रतिगमात् ।

बहिर्भूता भूतास्तव यजनपूतास्स्तुतिकरा
धराधीशामीशां त्रिभुवनमहेशां भजति वै ॥

उपमा
परं भक्ताह्वाने घनरवमयूरीव चकिता शिखिनमिव ताटङ्कनटनं
शब्द सौष्ठव -
विनम्राक्षीं साक्षीं विमलजलजाक्षीं कृपेक्षापेक्षार्थी -
– जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशां -
– प्रह्लादं विपदि कृतामाह्लाद्धरितं
– दशग्रीवाभाराद्रहितमकरोद्रावणतनुः
– यतिपतिमतिस्तम्भितनयाः
– अमी सिद्धाः वृद्धास्तव चरणबद्धा -
– अवर्णाविर्भूताकचटतपवर्गा -
– वृथैवाशापाशं कनकतरूणीकल्कनकथा -
– शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गीकुरु सुतं
– विराजन्तं राजन्तं -
कवि की आत्मोक्ति -
क्वलोके शाक्तानां सुमधुरिमपीयूषमनघं
क्व कृष्णः पक्षाणां बलरहितकाकोऽल्पवयसः ।
भवद्दीक्षापाङ्गाद् हरसखि हरेर्वायसमिव
अपात्रं हे मातस्सरसिजसुधापात्रमभवम् ॥

और दिव्य माँ का व्यञ्जक “म” वर्ण से निर्मित एकाक्षरी श्लोक –
ममेमा मा मा मा मम मम ममामा ममिम माः
मामामं मे मेऽमम मम ममामूमिममुमे ।
मिमे मामी मामूममममममामीम मम मे !
मामां मीमामोऽमुममुमुममामा ममिममोम् ॥

स्तोत्र भावभरा है जो सब अभावों से परे है -
कवि स्वयं कहता है -
सदा भावाधिक्यं हि सकलमभावं विजयते ।
प्रस्तुत ग्रन्थ के श्लोक पूर्णतया सारगर्भित एवं विविध अर्थों के भण्डार हैं । इनके वैदिक तान्त्रिक, याज्ञिक, सामाजिक स्तर पर अनेक अर्थ किए जा सकते हैं । इन श्लोकों के विविधि प्रयोग लौकिक एवं अलौकिक समस्या के समाधान हेतू आचरित

किए जा सकते हैं । ऐसा ग्रन्थकार का मानना है । वे प्रयोग गुह्य होने से प्रकट नहीं किए गए हैं । केवल श्रद्धापूर्वक पाठमात्र भी अपने आप में माँ जगज्जननी ललिताम्बा की कृपा प्रसादार्थ अलं है । इस ग्रन्थ से प्रेरणा लेकर मैं नए संस्कृत के लेखकों से भी निवेदन करती हूँ कि वे संस्कृत में काव्य रचना अवश्य करें । उनका लिखा हुआ प्रत्येक शब्द माँ भारती के स्वरूप को पुष्ट ही करेगा । व्याकरणादि नियमों की परवाह न करके वे लेखन में प्रवृत्त हों क्योङ्कि विद्वानों ने कहा है -

धातोर्बह्वर्थत्वाद् बहुलग्रहणात् पृषोदरादित्वात्
आकृतिगणेन पाठात् स्वेच्छानुगुणाद् उणादिकल्पनातः ।
छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकतावशादमुश्य मनोः
सिद्धैः कथितेऽर्थेऽस्मिन् वैयाकरणशासनानुमतिः ॥

- (भास्कर राय भारती)

भाव यह है कि धातुओं की अनेकार्थता है, बहुलता, पृषोदरादि, आकृतिगण, विवक्षा, उणादि, वैकल्पिक अर्थ, प्राचीन सम्प्रदाय के मान्यतार्थ की परम्परा, ये सब व्याकरण शास्त्र से भी कहीं आगे की सीढ़ई है जिस पर नये लेखक चढ़ सकते हैं । व्याकरण शास्त्र या अर्थ विवेचन से डरकर कविजनों को काव्य रचना से विरत नहीं होना चाहिए । क्योङ्कि काव्य रचना करना कवि का कार्य है अर्थ सङ्गति बैठाना वैयाकरणों का कार्य है, कवि स्वतन्त्र है वैयाकरण परतन्त्र हैं, कवि अग्रगामी है व्याकरणज्ञ अनुगामी हैं । कहा भी है - "प्रयोग शरणाः वैयाकरणाः" । -जितनी भी गत्यर्थक धातु हैं वे सब ज्ञानार्थक भी होती हैं । -छन्दोभङ्ग दोष के लिए भी आचार्यों ने कहा है -

न वा एकेनाक्षरेण छन्दांसि वियन्ति न द्वाभ्यां -
यह छन्द शास्त्र का वचन है (छन्दो भास्कर)
– रातमाण्डव्यादि छन्दः शास्त्र के प्रवर्तकों ने यति को माना ही नहीम् । पिङ्गल सूत्र तो कलियुगीय ग्रन्थों के विषय में है दिव्य रचना में उसकी गति नहीं है -(छन्दो भास्कर)
और कहा भी है - "छन्दोव्याकरणयोर्विरोधो छन्दो बलीयः"
स्पष्ट हैं कि -
अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः ।
अतः नए कवि काव्यसृजन में प्रवृत हों और माँ राजराजेश्वरी हम सब पर प्रसन्न हों इति शम् ।

शरद्पूर्णिमा २०७३

१६-१०-१६
विनीता
श्रीमती कुसुम शास्त्री

श्री ललिताशतकं

महिम्नः पारं ते सकलकलनानामपि परः
गरिम्णो भारस्ते तुलयितुमशक्ता मुनिजनाः ।
लघिम्नस्सारस्ते जगदुदधिमध्ये विलसति
अणिम्नो द्वारं ते विवृतमयि मातः ! कणभुजा ॥ १॥
हे मातेश्वरि ! आपकी महिमा का पार समस्त गणना से परे है । आपकी गरिमा का भार मुनिजन भी तौलने में असमर्थ हैं । आपकी लघिमा का सार संसार सागर के रूप में विलास कर रहा है । आपकी अणिमा का प्रवेश द्वार महर्षि कणाद ने अपने दर्शन में उद्घाटित किया है ।

भाव - माँ ललिताम्बा की महिमा का रहस्य ऋषियों ने उनकी ही कृपा से कुछ-कुछ जाना है परन्तु उनका पार कोई नहीं पा सका ।

छन्द = शिखरिणी ।

दिवा सञ्जायन्ते तवनयनमुद्रा रचनया
निशास्सम्भूयन्ते दृगलसजनिद्रालववशाद् ।
तवाक्षिप्रक्षेपैर्विघटयति लोकान्भवपतिः
तदा सृष्टेर्लीला भवति जगदीशे ! मनसिजा ॥ २॥
हे माँ! आपके नेत्रों के खुलने से दिन तथा बन्द करने से रात होती है । आपके नेत्रों के इशारे से ही शिव समस्त लोकों का विनाश करते है तथा सृष्टि की रचना भी आपके मन का विलास मात्र है ।

भाव - सृष्टि रचना, विनाश, दिन एवं रात आदि समस्त कार्यकलाप माता द्वारा ही निर्दिष्ट खेल मात्र है ।

शिवारूढा मूर्तिः कथयति शिवे ! कल्पितकथां
इयं सृष्टेरूपे प्रसरति सुलावण्यरचना ।
बहुस्यामेकोऽहं त्रिभुवनपतिश्चिन्तयति वा
तदेशस्याधारे विमलमनसा नृत्यति जया ॥ ३॥

यह शिव की छाती पर खड़ी महाकाली की मूर्ति वास्तव सृष्टि का प्रतिरूप ही है । जब परमात्मा “मैं एक से अनेक रूपों वाला हो जाऊँ” ऐसा विचार करता है तब शिव को आधार बनाकर माता ही सृष्टिमूर्ति के रूप में नर्तन करती है ।

भाव - यह शिव -काली की मूर्ति मात्र नहीं है बल्कि सृष्टि (शिव +शक्ति)का परिस्फुरण है -
शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम् ।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ॥ -सौन्दर्यलहरी –शङ्कराचार्य

व्याकरण तदा +ईशस्य आधारे

महाकाली काली तिमिरघनकाली त्वभयदा
सुकाली कङ्काली त्वमसि कपिला नीलचिकुरा ।
अघौघानां मध्ये निवसितजनानामयि शुभे !
महाकाली काली मम मनसि “गौरी” इति मता ॥ ४॥
हे माँ, आप महाकाली, काली, घनघोर काली, गूढकाली, कङ्काल धारिणी, कपिला, नीले केशों वाली भयानक होते हुए भी अभय देने वाली हैं । पापों के समूह से लिप्त जीवों के लिए ही आप महाकाल रूपिणी काली हैं । हे शुभदात्री मेरे भक्ति से भरे मन में तो आप गौरी ही हैं ।

भाव - आप पापियों के लिए ही महाकाली हैं भक्तों के लिए सौम्या “गौरी” ही हैं ।

विधातुर्भीतानां बहुविधनिधेर्दानकुशला
दरिद्राणां भाले विधिकटुलिपिक्षालनफला ।
सुभक्तानां गेहे सुभगमणिमाला कनकदा
महालक्ष्मीरूपे त्वमसि वरदा क्षीरतनया ॥ ५॥
विधाता द्वारा निर्दिष्ट दुर्भाग्यशालियों को भी आप अनेक प्रकार की सम्पत्ति प्रदान करती हैं यदि वे आपके भक्त हैं तो । गरीबों के मस्तक पर ब्रह्मा जी द्वारा लिखित बुरे लेख को भी आप धो देती हैं । भक्तों के घर में सौभाग्य रूपी मणिमाला एवं स्वर्णादि बहुमूल्य पदार्थ एवं विशिष्ट वरदान देने वाली क्षीरसागर की पुत्री महालक्ष्मी आप ही हैं ।

भाव - भक्तों के भाग्य से अभाव को हटाने वाली महालक्ष्मी आप ही हैं ।

तुषाराकारास्ये हि सरसिजपद्मासनगते!
निनादैर्झन्झन्झं कुरु मतिमतां वेदनिहितैः ।
अविज्ञानाविज्ञानतिपटुकरी ज्ञानमधुदे !

शुभाशीर्वादाद्यैर्निजशरणदे ! पाहि नु सुतम् ॥ ६॥
बर्फ समान श्वेत कमल पर विराजित श्वेत मुख वाली माँ सरस्वति! वेद की ज्ञान लहरियों से बुद्धिमानों को भी झङ्कृत कर दो । आप अज्ञान व ज्ञान सम्पन्न सबको ज्ञानामृत से तृप्त करने वाली हैं । हे शरणदात्री माँ! अपने शुभाशीर्वादों से अपने पुत्र की रक्षा करो ।

भाव - ज्ञानी व अज्ञानी आप सबका सहारा हैं । हमारी अज्ञान से रक्षा करो ।

व्याकरण अविज्ञान्+आविज्ञान्

यदा लोके मातः ! प्रबलरिपुसेना प्रसरति
खलैश्चेक्रीयन्ते प्रमथनहतास्ताडितजनाः ।
तदा रूपं धृत्वा ज्वलनपटपीताम्बरधरं
सुवल्गां हस्तेषु प्रकटबगला सा रिपुदला ॥ ७॥
हे माँ! जब संसार में भयानक शत्रु सेना फैल जाती है । दुष्ट लोग सज्जनों को पीड़ित करने लगते हैं, तब आप प्रकाशित पीले रेशमी वस्त्र को धारण करके, शत्रु संहारिणी एवं दुष्टों पर लगाम लगाने वाली पीताम्बरा “बगलामुखी” रूप में चाबुक हाथ में लिए हुए प्रकट हो जाती हो ।

भाव - शत्रु संहारिणी बगलामुखी आदि रूपों में आपका ही विलास है ।

निशुम्भश्शुन्भो वा भुवि शुभविहीनौ नु विहितौ
प्रचण्डो मुण्डो वा बलयुधि विमुण्डावपि कृतौ ।
महीं शेते युद्धे दनुजमहिषो वा सुरपतिः
असृग्बीजो निर्बीजमलभत दुर्गे ! तव कृपा ॥ ८॥
आपने शुम्भ व निशुम्भ को नरक में भेजा, युद्ध में चण्ड व मुण्डासुर को शिर विहीन किया, महिषासुर को धराशयी कर दिया तथा रक्तबीज को भी निर्बीज (रक्तहीन)किया । माँ दुर्गे ! यह सब आपकी कृपा है ।

भाव - माँ दुर्गा के रूप में आदि शक्ति ही राक्षसों का हनन करने वाली हैं ।

नरेन्द्राणां घोरे सघनवनमध्ये ??(सभवनमध्ये?)परिवृता
अधीरा सन्त्रस्ता वरवरणकाले जनकजा ।
उमा गौरी भद्रा कमलनयनेति प्रगदिते
तवापर्णे! रामः पुरि दलति चापं सुकृपया ॥ ९॥
दुष्ट राजाओं की सभा रूपी भीषण जङ्गल में स्वयंवर काल में जब सीता जी अधीर व त्रस्त होकर आदिशक्ति को उमा, गौरी, भद्रा, कमलनयना इत्यादि नामों से

व्याकुलता पूर्वक पुकारने लगी तब माँ पराम्बा की ही कृपा से श्रीराम ने मिथिला नगरी में चाप भङ्ग कर सीता जी के मनोरथ को पूर्ण किया ।

भाव - माँ आदिशक्ति ही सब भक्तों की कामना पूर्ण करने वाली हैं ।

पुराकाले रुक्मेर्ललितभगिनी संशययुता
स्वयं वर्तुं काले चपलशिशुपालादतिभिया ।
जगन्मातुः पूजां खलु विपदि कर्तुं निरगमत्
तदा गौरी द्वारा मधुमधुरगोपः प्रकटितः ॥ १० ॥
प्राचीन काल में रुक्मि की बहन रुक्मिणी अपने स्वयंवर में “कहीं शिशुपाल से विवाह न हो जाए” इस डर से विचलित होकर जगन्माता आदिशक्ति की पूजा के लिए जब आई तब विपत्ति निवारण की प्रार्थना करने पर माँ गौरी ने रुक्मिणी के मनोवाञ्छित वर को, मधुर ग्वाले (श्री कृष्ण)को प्रकट कर दिया ।

भाव - माँ दयार्द्र हृदया तथा सद्य फलप्रदा हैं ।

मखाणामालोकस्सुसुरतसमीरे विगलितः
सुरेन्द्रस्यावासो ललितरमणीनां परिकरः ।
विलासेष्वासक्ता दिवि सुरगणा भ्रष्टचरिताः
अनन्ताया भक्तः शिशुघनरवश्शक्रमजयत् ॥ ११ ॥
जब इन्द्र के द्वारा सम्पादित यज्ञों का प्रकाश धूमिल हो गया एवं देवराज इन्द्र का निवास सुन्दर रमणियों का मञ्च बन गया । समस्त देवता मलिन चरित्र वाले हो गए तब माँ आदिशक्ति के भक्त बालक मेघनाद ने इन्द्र को पराजित कर दिया ।

भाव - इन्द्र की पराजय में उसका धर्म विमुख होना तथा मेघनाद की मातृभक्ति ही मूल कारण थी ।

व्याकरण - शिशु +घन +रवः (बाल)(मेघ)(नाद)

इयं गेहे लक्ष्मीरमृततरणिर्जीवनसुधा
मधुप्रेमालापैर्विषमविषमुत्तारयति सा ।
कला रामादीनामपि नु भवदम्घ्रेर्मम मतौ
रमा रामा भूत्वा विरचयति मायामयतनुः ॥ १२ ॥
पत्नी घर की लक्ष्मी, अमृत की नौका तथा जीवन की मिठास है जो अपने मधुरालाप से भयानक विष को भी निष्प्रभावी बना देती है । वास्तव में स्त्रियों की कलाएं आपके चरणों का प्रताप ही हैं । शक्ति ही नारी का रूप धरकर माया की लीला को विस्तारित करती है ।

भाव - हे जगदम्बे ! समस्त स्त्रियाँ आपका ही प्रतिरूप हैं ।

विवादे सञ्जाते विवदति सुमूकोऽपि तरसा
आपाङ्गो हीनाङ्गो हिमपति शिरो लङ्घयति वा ।
दरिद्राणामीशो व्रजति नगराधीशपदवीं
भवानी रुद्राणीति सुमधुरवाचः फलमिदम् ॥ १३॥
जो लगातार सच्चे मन से पराम्बा, भवानी, रुद्राणी ऐसा जपता है वह गूँगा होने पर भी माँ की कृपा से शास्त्रार्थ जीत सकता है, पत?? (विकलाङ्ग)होने पर भी हिमालय को लाङ्घ सकता है, दरिद्र होने पर भी नगर का राजा बन सकता है । उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं ।

भाव - माँ का भक्त आश्चर्यजनक कार्य करने में भी समर्थ होता है ।

भवाब्धावासक्तो विविधविधपीडाऽऽवृतनरः
जनन्यास्सेवायामनुपमितनिष्ठामुपगते ।
यथाऽऽलोकारोहः पथि भवति दीपं प्रतिगमात्
तथावल्लोकेभ्यस्तव चरणसेवाप्रतिफलम् ॥ १४॥
भवसागर में अनेकानेक पीड़ाओं से व्याकुल व्यक्ति जब माँ पराम्बा की सेवा में एकनिष्ठ हो जाता है तब उसका मन ज्ञान से धीरे-धीरे ऐसे ही प्रकाशित होने लगता है जैसे दीपक की ओर चलने पर धीरे-धीरे मार्ग अधिकाधिक प्रकाशित होने लगता है । हे माँ यह आपके चरणों की सेवा का ही प्रतिफल है ।

भाव - माँ में जिस क्रम से भक्त की निष्ठा बढ़ती है उसी क्रम से उसका आत्मिक विकास होने लगता है ।

गणानामादौ यो रसयति गणाध्यक्षपदवीं
प्रियाणामादौ वा समधिगतमङ्ङ्केऽभयपदम् ।
सुराणामादौ वै प्रथमगणपूजामधिगतं
भवानि! त्वत्पुत्रास्पदचयनवृत्तेः फलमिदम् ॥ १५॥
यह गणेश जी गणों की अध्यक्षता का जो आनन्द लेते हैं, आपके प्रियजनों में सर्वप्रथम होकर आपकी गोद में खेलते हैं, देवताओं में प्रथम पूजा का अधिकार रखते हैं । हे भवानी यह सब आपके पुत्र पद को प्राप्त करने से ही सम्भव हुआ है ।

भाव -माँ की कृपा से ही ऐसा सुअवसर मिलता है ।

चिताभूमौ वासो विषमशननैपुण्यकुशलः

वृषो वृद्धो यानं भुजगपतिभूषं सुरपतेः ।
अमाङ्गल्यं सर्वं परिणतिगतं मङ्गलमयं
भवानि ! त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ १६॥
भगवान शिव का चिता भूमि में निवास, विषैला भोजन, बुड्ढा बैल रूपी वाहन, सर्पों के आभूषण, है परन्तु समस्त अमङ्गल कारी वस्तुएं भी मङ्गलकारी बन गई जब उन्होनें आपका पाणिग्रहण किया । माँ! यह आपके साथ विवाह होने से ही सम्भव हुआ है ।

भाव - माँ से जुडने पर व्यक्ति का दौर्भाग्य भी सौभाग्य में बदल जाता है ।

छलीवेशं धृत्वा लघुलघुपदैर्नीलनयनः
सदात्मा वैराजो नु बलिमलषद् स्वल्पवसुधाम् ।
त्रिपादीभूत्वाऽयं त्रिभुवनमयाद्धामनवटुः
भवानि! त्वद्धामग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ १७॥
साक्षात् परमात्मा भी कपटी वेश धारण करके नीले नेत्रों वाले वामन ब्रह्मचारी का रूप धरकर छोटे-छोटे कदमों से राजा बलि से त्रिपद भूमि की याचना करता है, बाद में तीन कदमों में ही त्रिभुवन को नाप लेता है, इस चमत्कार के पीछे हे माँ! आपका ही तेज प्रताप काम कर रहा था ।

भाव - माँ की महिमा से ही अवतार भी महिमा मण्डित हुए है ।

तमोभूता लोकास्तिमिरघनघोरे निपतिताः
इदं हर्तुं मातः ! रविवरदभासः समुदितः ।
भवद्धामाधानाद्धि भवति विभा भास्करकरे
भवानि त्वत्तेजो ग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥ १८॥
समस्त लोक जब अन्धकार से व्याप्त थे तब हे माँ! आप ही सूर्य किरणों के समान उदय हुई आपके तेज का सन्निवेश ही सूर्य की किरणों में चमकता है । हे माँ भवानी ! यह आपके तेज को धारण करने का ही फल सूर्यदेव में चमक रूप में है ।

भाव - माँ के प्रकाश से ही सबका प्रकाश है ।

रमाणां साम्राज्यं हि भुवितलमारभ्य विततं
गृहं वारण्यं वा कृतमजरवैलास्यलसितम् ।
मनोजस्यायासे पतति पतने मोहितजनः
मृडानि ! त्वत्सेवासरणिफलमाप्तं युवतिभिः ॥ १९॥

रमणियों का साम्राज्य धरती से स्वर्ग तक फैला है । घर हो या जङ्गल, सब जगह स्त्रियों ने विलास वैजयन्ती लहरा रखी है । हे माँ! कामदेव के लघु प्रयास से ही व्यक्ति मोहित हो जाता है । इसके पीछे एक ही कारण मुझे दिखाई देता है कि आपकी सेवा रूपी मार्ग पर चलने के कारण ही स्त्रियों को अजेय वरदान मिला है ।

भाव - स्त्रियाँ शक्ति का ही रूप हैं अतः वे अजेय हैं ।

त्वमम्बारूपैर्वा धरसि जठरे जीवसकलान्
महामायाचक्रे भ्रमितमतिबाला यममुखाः ।
वृथा पङ्के यान्ति व्यवहितविवेकाः पतनगाः
बहिर्भूता भूतास्तव यजनपूतास्स्तुतिकराः ॥ २०॥
हे माँ! आप ही माता बनकर समस्त जीवों को अपने पेट में धारण करती हैं । आपकी माया में फँसकर अविवेकी जन यमपाश में पड़ते हैं और उनका इस मोह-माया रूपी कीचड़ में ही बार -बार पतन होता है । जो आपकी स्तुति करते है केवल वही जीव आपकी पूजा के प्रभाव से पावन होकर जन्म चक्र से बाहर निकल जाते हैं ।

भाव - केवल माँ की भक्ति ही मोक्षप्रदा है ।

भवन्नाम्नो माया खलु वहति वैचित्र्यविविधं
अपर्णापर्णेति प्रगदति नु मिथ्या जनगणः ।
यदा मूर्धान्यस्तो भवति तव जीवोपरि करः
सुवर्णैः पर्णैर्वा सफलमधुमोक्षैर्भरति तम् ॥ १२॥
हे माँ । आपके नाम का विचित्र प्रभाव है । आपको लोग “अपर्णा” कहते हैं यह झूठ ही है । क्योङ्कि जब आपका वरदहस्त जीव के मस्तक पर पड़ता है तब आप उसे सुवर्ण के पत्ते (भोग)और मोक्ष रूपी मीठे फल से सम्पन्न कर देती हैं ।

भाव - “अपर्णा” का अर्थ बिना पत्तों वाली होता है । पर माँ जगदम्बा स्वर्ण के पत्तों व मोक्ष के फलों से हरी-भरी लता हैं ।

विवादे शास्त्राणां त्वमसि ललिते! पद्यचतुरा
विलासे भग्नानां त्वमसि मधुरे ! तिक्तमदिरा ।
भवाब्धौ रूग्णानां त्वमसि सरलारोग्यवटिका
समाधौ मग्नानां त्वमसि सुविदेऽनन्तसुखदा ॥ २२॥

हे माँ शास्त्रार्थ काल में आप ही श्लोकादि निर्माण की निपुणता हो (आप ही विजय प्रदान करती हो), भोग विलास में विच्छिन्न व्यक्तियों का मद्य भी आप ही हो (अर्थात् उनके कर्मों के परिणाम स्वरूप ही उन्हें फल देती हो)संसार सागर में डूबे रोगियों के लिए उन्हें उभारने वाली आरोग्य वटी हो और समाधि में लीन भक्तों को आप ही ब्रह्मानन्द दात्री हैं ।

भाव - माँ ही विविध रूपों में तदनुरूप फलप्रदा हैं ।

बहिर्दृष्टा काली सरलजनचित्ते सिततनुः
नु शैलेन्द्रापत्याऽपि बहुतरलीभूतहृदया ।
अपर्णारूपे वै बहुकनकपर्णा प्रियलता
सति! स्वात्मानं त्वां सदसदपरार्थामनुभजे ॥ २३॥

माँ! आप बाहर से कृष्ण वर्ण वाली है किन्तु भक्तों के प्रति आपका हृदय प्रकाशमय ही है । आप कठोर पर्वत (हिमालय)की पुत्री होकर भी नवनीत के सम कोमल हृदया हो । आप अपर्णा (बिना पत्तों वाली)होकर भी भक्त के लिए स्वर्ण पल्लवों से भरी लता के समान हो । हे माँ! मैं तो आपको अपनी आत्मस्वरूपिणी और सदसद् से परे शुद्ध चैतन्य रूप में भजता हूँ ।

भाव माँ! भोगी को भोग और योगी को योगप्रदात्री हैं ।

अयो हेमाधात्री जगति कुशला पारसशिला
परं सत्यं सा नाल्पमपि ननु सारूप्यनिपुणा ।
जगन्मध्ये मातुर्नु किमधिकमौदार्यगणनं
सदा वै सारूप्यं चरणपतितेभ्यः प्रदिशति ॥ २४॥

मैंने सुना है कि लोहे को सोना बनाने में पारस पत्थर समर्थ है किन्तु वह भी लोहे को सोना ही बनाता है पारस नहीं । परन्तु हे माँ संसार में आपकी उदारता की गणना इससे अधिक क्या होगी कि आप तो अपने शरणागत को अपने जैसा ही (सारूप्य मुक्ति)बना देती हो ।

भाव - माँ! पारस से भी बढ़कर भक्तों को फल प्रदान करती है ।

इयं दिव्या काशी स्मरहरपुरी मङ्गलकरा
त्रिलोकेऽन्या धन्या जननमरणाद्रक्षणपरा ।
जगन्नाथो भिन्नः प्रभवति न वै मोक्षकरणे
जगन्माता मुक्तिं दिशति पशुपाशप्रहरणैः ॥ २५॥

मैंने सुना है कि दिव्या काशी नगरी भगवान शिव की माङ्गलिक नगरी है जो त्रिलोकों से न्यारी है । यहाँ प्राण त्यागने पर लोगों को मुक्ति मिलती है । ऐसी मान्यता है । परन्तु भगवान शिव अकेले ही जीव को मुक्त करने में समर्थ नहीं हैं । माँ अम्बा जी ही साक्षात् पाशों से बन्धे पशु (जीव)के पाशों को काटकर उन्हें मोक्ष देती हैं ।

भाव - मोक्ष प्रदान करने में मुख्य भूमिका पराम्बा की ही है न काशी की, और न शिव की ।

चतुर्भिर्हि ब्रह्मादिनरहरिरूद्रान्वितपदैः
सुवर्णालङ्कारैश्शिवफलकसिंहासनवरम् ।
महारत्नैर्दीप्तं विविधमणिमाणिक्यलसितं
सदानन्दैरक्ष्या हि तदुपरि देवि! त्रिभुवनम् ॥ २६॥
ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र और ईश्वर रूपी चार पायों से अलङ्कृत और शिव रूपी फलक से सुशोभित, रत्नालङ्कार से भूषित सिंहासन पर बैठकर ही हे माँ! सदानन्द मग्न होकर त्रिभुवन आपके द्वारा ही रक्षणीय हैं ।

भाव - माँ ही समस्त देवताओं को शासित करने वाली शक्ति है ।

चतुष्पीठाज्जाताऽखिलभुवि चतुर्वर्गरचना
चतुर्वर्गाणां वै निखिलजननी दानकुशला ।
सुरा लोके भोगान् ददति नु तवाज्ञानियमिताः
परं मोक्षेच्छायां तवचरणछायां प्रति गताः ॥ २७॥
हे माँ! आपके सिंहासन के चारों पायों से ही धर्म-अर्थ-काम-मोक्षादि चतुर्वर्ग की रचना हुई है और आप ही चतुर्वर्ग को प्रदान करने में समर्थ है । अन्य देवता आपकी ही आज्ञा से भक्तों को भोग तो प्रदान कर सकते हैं परन्तु मोक्ष देने का जब प्रश्न आता है तो वे देवता भी आपके चरण की शरण ग्रहण करते हैं ।

भाव - अन्य देवता माँ से पूछकर ही भोग प्रदान करते है पर मोक्ष देने का अधिकार माँ ललिताम्बा के ही अधिकार में है ।

विधाताद्या न्यस्तैर्द्विकरकमलैर्मस्तकगतैः
पदार्चाकाले वै तवचरणपीठं प्रति नताः ।
त्रिदेवानां पूजा भवति तव पादार्चनभरैः
यतस्तेषां वन्द्यां प्रयतचरणां यामि शरणम् ॥ २८॥
हे माँ! ब्रह्मादि त्रिदेव दोनों हाथ मस्तक पर बाँधकर आपके चरणों की पूजा के लिए आपकी चरणपीठ पर नमन करते हैं । आपके चरणों की पूजा से त्रिदेवों की पूजा

भी सम्पन्न हो जाती है । अतः ब्रह्मा-विष्णु-शिव के द्वारा भी प्रणम्य एवं पूजित चरणों वाली आपकी मैं शरण ग्रहण करता
हूँ ।

भाव -माता ललितेश्वरी की चरणवन्दना से त्रिदेवों की पूजा भी सम्पन्न हो जाती है क्योंकि वे भी आपके श्री चरणों के उपासक हैं ।

विधाता धाता वा स्मरहरहरो वा पशुपतिः
सुजिष्णुर्विष्णुर्वा ननु शचिपतिर्वा शतमखः ।
कविश्शुक्राचार्यो मरणरहितो वा सुरगुरुः
सपत्नीकास्सर्वे तवचरणपीठं प्रतिनताः ॥ २९॥
चाहे विधान कर्त्ता ब्रह्मा, कामदेव का मान मर्दन करने वाला शिव, विश्व विजयी विष्णु, सौ यज्ञकर्ता इन्द्र, कवि शुक्राचार्य या अमर देवगुरु बृहस्पति ही क्यों न हो, ये सब देवता भी पत्नियों सहित आपके चरण कमलों की वन्दना करते हैं ।

भाव - सब देव-देवियों द्वारा आप ही पूज्या हैं ।

यदा देवाद्देवं प्रति चलति भोगेच्छुकनरः
तदा नानायोनिं भ्रमति भवमध्ये श्रमयुतः ।
हि भुक्तिं मुक्तिं वाऽधिभवति स हस्तामलकवत्
धराधीशामीशां त्रिभुवनमहेशां भजति वै ॥ ३०॥
जब तक जीव देवता से दूसरे देवता को भोगों की कामना पूर्ति के लिए भजता है तब तक वह व्यर्थ ही नाना योनियों के चक्कर काटता है । और जब वह जगज्जननी त्रिभुवनैक अधिष्ठात्री सर्वसमर्था ललिताम्बा की शरण में जाता है तब वह वास्तविक भोगों के साथ-साथ मोक्ष को भी प्रत्यक्ष प्राप्त कर लेता है ।

भाव - माँ के चरणानुयायी को भोग और मोक्ष दोनों ही सुलभ हैं ।

भवेद्योगाभ्यासी करचरणपद्मासनविदः
अथ ध्यानापेक्षी जगतितलमीशादिगुणभृद् ।
नरास्ते सौभाग्यैरपि सफलकामाः क्षितितले
सुधाधाराधारं हि तव शरणं यान्ति कमले ॥ ३१॥
चाहे योगाभ्यास करने वाला या स्वस्तिकादि आसनों में निपुण हो अथवा ध्यान योगी हो या स्वयं ईशादि गुणों वाला ईश्वर हो । हे माँ! वे ही जीव सौभाग्यशाली हैं जो अमृत के आधार आपके चरणों की शरण ग्रहण करते हैं ।

भाव - माँ के चरण ही सब विभूतियों से बढ़कर हैं ।

अमर्त्यानां मध्ये गुणगणगरिष्ठो गिरिधरः
हृषीकेशाच्छ्रेष्ठो भवपति शिवो देवगिरिशः ।
समाधौ श्रीकण्ठस्स्मरति शुभदात्रीं प्रतिपलं
शिवां तां शर्वाणीं पशुपतिकिशोरीमनुभजे ॥ ३२॥

देवों में गुणवान् हैं भगवान विष्णु जी, और उनसे भी श्रेष्ठ हैं महादेव । परन्तु समाधिष्ठ अवस्था में भगवान महादेव श्री शुभदात्री जगदम्बा राजराजेश्वरी ललितेश्वरी का भजन करते हैं । अतः मैं भी कल्याणमयी सदाशिव कामेश्वर की पटरानी का सतत चिन्तन करता हूँ ।

भाव - ध्यान, भजन का अन्तिम लक्ष्य माँ ही हैं ।

सदा सेव्या वाणी विबुधजनवृन्दैरनुदिनं
चला लक्ष्मीर्लोके विरमति न राज्ञां गुणिकुले ।
हि पातिव्रत्येनापि भुवि भवदेकातिशयिनी
मनोरूपापन्ना भुवनपतिमेकं नु भजति ॥ ३३॥

माँ सरस्वती सभी विद्वानों द्वारा सेवित है, माँ लक्ष्मी भी इतनी चञ्चल है कि गुणज्ञ राजाओं के कुल में न ठहरकर बार-बार अपना स्थान बदलती है । परन्तु हे माँ पतिव्रताओं में अग्रगण्या आप ही हैं जो सदैव विविध रूप लेकर भी एकमात्र सदाशिव का ही वरण करती हैं ।

भाव - माँ अम्ब सदाशिव की ही शक्ति हैं । उनकी निष्ठा अटल ही है ।

सदा सत्त्वोद्रेके भवति खलु वीणारवरताः
रजोयुक्ता लक्ष्मीर्विरचयति सौवर्णकलिलम् ।
तमस्तन्त्रे काली परमपदमन्त्रावरणदा
गुणातीता दिव्या गुणकथनयोग्या न भवति ॥ ३४॥

हे माँ! आप सत्त्वगुण वृद्धि होने पर सरस्वती स्वरूपा हैं । रजोगुण वृद्धि होने पर लक्ष्मी स्वरूपा हैं जो सुवर्णादि माया के दलदल में जीवों को फाँस लेती हैं । तमोगुण की वृद्धि होने पर महाकाली बनकर जीवों को तान्त्रिक कौतुक में उलझाकर परमपद से दूर कर देती हैं । और तीनों गुणों से परे आप दिव्य स्वरूपा हैं जिनका वर्णन अकथ्य है ।

भाव - आप त्रिगुणी मूर्ति में क्रमशः सरस्वती, महालक्ष्मी व महाकाली है और निर्गुण रूप में वर्णनातीत हैं ।

सभायां द्रोपद्यै विपदि न चिराच्चीरमददुः
रणे मोहोत्पन्नेऽददत खलु गीताऽमृतमिदम् ।
अकाण्डे चैद्ये वै सततमपलापं विलपने
शिरश्छेत्ता हासे नरकरिपुकृष्णस्तव तनुः ॥ ३५॥

हे माँ! आपने ही सभा में द्रौपदी पर विपत्ति आने पर उसका चीर यथा शीघ्र बढ़ाया था, युद्ध में अर्जुन के मोहग्रस्त होने पर गीता रूपी अमृत पिलाया था, बिना अवसर ही (यज्ञ में)शिशुपाल द्वारा अपशब्दों की बौछार करने पर अनायास ही उसका सिर काट दिया था, वह कृष्ण आपका ही स्वरूप था ।

भाव - माँ ललितेश्वरी ही भगवान श्री कृष्ण के रूप में अवतरित हुई थी ।

पशौ पाशाबद्धाः कलुषितजना गोचरगताः
मदान्धीभूतास्तेऽधिकगहनगर्ते कवलिताः ।
विलीनास्संसारे विचलितमना बिन्दुविमुखाः
विमुक्ता एवैते भ्रमरहितबिन्दुं प्रतिगताः ॥ ३६॥

जो बिन्दु (परब्रह्मरूपिणी पराम्बा)से विमुख हैं वे पशुभूत कलुषित जीव पाश में बन्धे हुए मद से अन्धे होकर गहन अन्धकारमय गढ्ढए (संसार)में फँसे हैं । वे इस संसार में ही लीन होकर भ्रमित हैं । और जो निःसंशय होकर बिन्दु (पराम्बा)की ओर गतिशील है वे ही मुक्त हो पाते हैं ।

भाव -जैसे चक्र की धुरी से विमुख होने पर जीव कहीं भी चक्र पर बैठे वह भ्रमण में ही रहेगा । जो बिन्दु रूपी धुरी पर आ जाता है वह लम्बे चक्र लगाने से बच जाता है ।

शिवो वा शैवो वा गिरिधरवरो वा हलधरः
गुहो वा गोपो वापि गजवदनो वा कविवरः ।
रमा वा रामो वा हलखचितरेखा जनकजा
तव स्तन्यं पीत्वा खलु भवति बोधो मतिमताम् ॥ ३७॥

चाहे शिव हो या शिवभक्त, कृष्ण हो या बलराम, स्कन्द हो या ईश्वर, कविश्रेष्ठ गणपति, लक्ष्मी, श्री रामचन्द्र या माँ जानकी, कोई भी हो । हे माँ! आपका दूध (चेतन शक्ति)पीकर ही सबमें चेतनता आती है ।

भाव - माँ के चैतन्य से ही सब देवादि गण चेतन एवं शक्ति सम्पन्न हैं ।

परारूपा शुद्धा खलु भवति नादामृतपदा
प्रपश्यन्तीशानी सितकमलगुण्या मनुभवा ।

सुमध्या ध्याने हृद्गगनगमना वा बहुविधा
पृथग्कण्ठोद्भूता त्वमयि ! भुवि वै वैखरि मता ॥ ३७॥
हे माँ! आप शुद्ध नादात्मक रूप में परा वाणी, श्वेत कमल के समान प्रकाशित मन्त्र रूप पश्यन्ती, ध्यानावस्था में हृदयाकाश विविध रूपों वाली मध्यमा तथा कण्ठ से निर्गत होने वाली वैखरी स्वरूपा हो ।

भाव - वाणी का समस्त विलास माँ का ही विलास है ।

श्मसानेष्वासक्तस्स्मरहरपिशाचास्सहचराः
तनौ भस्मालेपः भुजगवलयैर्भूषणविधिः ।
भयाविष्टं सर्वं शिवपरिकरे गोचरगतं
त्वमेका मातङ्गी पशुपतिगृहे निर्भयभरा ॥ ३९॥
श्मसान में निवास, भूत प्रेतों का सङ्ग, शरीर पर भस्म का लेपन, भयङ्कर सर्पों के कङ्कणाभूषण, होने से भगवान शिव का समस्त परिवेश भय को देने वाला है । हे माँ! पशुपति शिव के घर में केवल आप ही निर्भय से परिपूर्ण हो ।

भाव -अर्थात् आपको देखकर ही भक्त शिव के वेशादि से उत्पन्न भय को त्याग आपके पास आ जाता है । आपके सहारे ही उसका साहस बढ़ता है ।

तवेच्छाशक्त्या सञ्जनयति विधाताऽखिलभुवं
तवेच्छाशक्त्या पालयति जगदीशो भुविजनान् ।
तवेच्छाशक्त्या रोजयति पशुभूतान्पशुपतिः
तवेच्छाशक्त्या सम्भवमभवमब्धिं प्रतरणे ॥ ४०॥
हे माँ! आपकी इच्छा शक्ति से ब्रह्मा जी सृष्टि की रचना, विष्णु जी सृष्टि पालन तथा शिव जी सृष्टि संहार करते हैं । माँ! मैं अकिञ्चन् भी आपकी इच्छा शक्ति से ही आपके गुणगान में अथवा भवसागर को पार करने में समर्थ हुआ हूँ ।

भाव - माँ की इच्छाशक्ति ही सृष्टि कार्य को सञ्चालित करती है ।

उमां विस्मृत्यैवाहमहमिकया पङ्कलितः
अहोरात्रं मायावरणवशगो नन्दति नरः ।
क्रियाशक्त्याश्शक्त्या वहति भुजगो घूर्णितधरां
क्रियादक्षासाक्षादभिनयति नाना परिचरैः ॥ ४१॥
माँ भवानी को भूलकर ही माया के वशीभूत होकर जीव मैं, मेरा इत्यादि कीचड़ में दिनरात डूबता है । माँ की क्रियाशक्ति से ही सर्पराज भ्रमणशील धरा को धारण

करते हैं । वास्तव में माँ जगदम्बा ही विभिन्न रूपों के द्वारा कुशलतापूर्वक अभिनय करती हैं ।

भाव - माँ की क्रियाशक्ति ही जगत् का संयोजन करती है ।

अहं दाता होता प्रवचनपटुः पण्डितवरः
ममाहङ्कारेणार्जितगरलरुग्णा मुनिजनाः ।
तव ज्ञानागारे प्रविशति यदा बोधितनरः
तदा योगी साधुस्सदसदनुरागादपगतः ॥ ४२॥
मैं दाता, हवनकर्त्ता, कथा प्रवक्ता तथा विद्वानों में श्रेष्ठ हूँ, इसी ममत्वादि विषैले अहङ्कार से ही प्राक्तन एवं नूतन मुनिजन रोगग्रस्त हैं । हे माँ! जब सजग होकर जीव आपके ज्ञान रूपी भवन में प्रविष्ट होता है तभी वह सच्चा योगी एवं सर्वश्रेष्ठ होकर सद्सद् अनुराग से पार हो जाता है ।

भाव - माँ की ज्ञानाग्नि से ही जीव की ऐहिक एवं पारलौकिक आसक्ति भस्म हो जाती है ।

पिता वा माता वा सितदधिमुखो वा प्रियसुतः
पतिर्वा जाया वा सुविकसितलावण्यकलिका ।
नृपो वा रङ्को वा विचरति चिरं कोटिकनकैः
तवाकर्षाबद्धो भ्रमति परिवारावरणगः ॥ ४३॥
पिता हो माता हो या स्वच्छ दही से लिप्त मुख वाला प्यारा पुत्र हो । पति यो या नूतन खिली हुई कलिका के समान नवयौवना पत्नी हो । राजा हो या रङ्क हो सभी माँ पराम्बा की आकर्षण शक्ति के वशीभूत होकर परिवार रूपी आवरण में कनकादि विषयों में देर तक भटकते हैं ।

भाव -जीव की भटकन का कारण माँ की आकर्षण शक्ति ही है ।

न वाणी वीणायाश्श्रुतिमधुरनादैश्श्रुतियुतैः
न गन्धर्वालापैस्स्वरलसितगानैर्रुचिकरैः ।
तथैवात्मानन्दीभवति ललिताया न च यथा
कुटीमध्ये सङ्कीर्तनजकरतालैः प्रमुदितः ॥ ४४॥
श्री माता पराम्बा न तो सङ्गीत श्रुतियों से युक्त तथा कानों को मधुर लगने वाले माँ सरस्वती की वीणा के नादों से, और न ही मनोहर स्वर से रूचिकर गन्धर्वों के आलाप भरे गीतों से वैसी प्रसन्नचित्त होती है जैसी साधारण कुटियों में कीर्तन करने वाले भक्तों की करताल से ।

भाव - माँ भक्तों के आडम्बर हीन नामसङ्कीर्तन को ज्यादा महत्त्व देती हैं ।

सुराणामाचारैर्न रसयति नन्दीसुवचनैः
गणेशस्याश्लेषैरवति न शिवा बालचपलैः ।
न कैलाशावासे शिवडमरुनादे रुचिकरा
परं भक्ताह्वाने घनरवमयूरीव चकिता ॥ ४५॥

माँ ललिताम्बिका न तो देवताओं के सदाचार से, न नन्दी के सुवचनों से वैसी प्रसन्न होती हैं । और बाल गणेश के चञ्चलता पूर्वक आलिङ्गन से भी वैसी सुखी नहीं होती हैं । कैलाश पर्वत पर भगवान शिव के डमरु की नादों में भी वैसी रूचि नहीं रखती है परन्तु भक्तों के प्रेम भरे आह्वानों पर तो जैसे बादल गर्जना से मयूरी उत्कण्ठित हो जाती है वैसी ही अवस्था वाली हो जाती हैं ।

भाव - माँ को भक्तों का आह्वान सर्वोपरि है ।

शिवो वा शैवो वा तदनुगमको वा परिचरः
हरिर्वा स्मार्तो वा वसुपतिचरो वा प्रियधनः ।
विधिर्वा सौरो वा गणपतिपरो वा मखकरः
इमेऽर्धाङ्गीरूपे तव यजनलग्नाः प्रथमतः ॥ ४६॥

शिव हो या शैव अथवा शिव परिचर हो । विष्णु हो या वैष्णव या कुबेर का धनप्रेमी सेवक हो । ब्रह्मा जी हों या गणपति का पूजक हो अथवा यज्ञकर्त्ता हो । ये सभी पूजक देवता की अर्धाङ्गिणी के रूप में सर्वप्रथम आपका ही पूजन करते हैं ।

भाव -चाहे कोई किसी भी देवता की उपासना करे वह वास्तव में उस देवता की शक्ति की ही उपासना है । अतः शक्ति ही सर्वोपरि है ।

सुनेत्रा मातङ्गी दशभुजवितण्डैरणमखे
जगद्रक्षाहेतौ रिपुदलसमिद्भिर्हुतभुजम् ।
प्रबोध्य ज्वालाभिर्निजदलविकम्पं क्षयकरा
तमो हृत्वा पद्मे! चरणजकराग्रैः कुरु गतिम् ॥ ४७॥

सुनयना मातङ्गी ही अपनी दश भुजाओं के प्रसार से युद्ध रूपी यज्ञ में जगत की रक्षा के लिए शत्रुरूपी समिधाओं से अग्नि देव को प्रज्ज्वलित करके अपनी सेना की कम्पन को मिटाने वाली हैं । हे माँ पद्मा ! मेरे अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कर मुझे चरणरश्मियों से शरणागति दें ।

भाव - माँ शत्रुओं को सद्गति तथा भक्तों को अभय प्रदान करती हैं ।

भवाब्धौ जातानां ननु विगतकाले गतवतां

भविष्यद्भूतानामपि लघुगुरूणामनुदिनम् ।
समारब्धानां च त्वमसि सकलाम्नायजननी
विधातुर्योनिस्त्वाममलकमलैस्सम्प्रति भजे ॥ ४८॥
माँ ललिताम्बिका जगत में व्यापक भूत -वर्तमान एवं भविष्यकालिक समस्त छोटे बड़े सम्प्रदायों की जननी हैं । हे माँ! आप ब्रह्मा जी की भी उत्पत्ति स्थल हैं । मैं आपका स्वच्छ कमलों से पूजन करता हूँ ।

भाव - माँ पराम्बा ही समस्त आम्नायों (धार्मिक सम्प्रदाय)की जननी हैं ।

अलङ्कारैः प्रीतां तरुणिजनसौभाग्यवरदां
सुहुङ्कारैर्रक्षोगणयुवतिगर्भ च्युतिकराम् ।
विटङ्कारैश्शीघ्रं यमजनितभीतिप्रहरणीं
कथङ्कारं तां न स्मरणपथलिप्तामनुभजे ॥ ४९॥
वस्त्रालङ्कारों से विभूषित, तरुणियों को सौभाग्य वर देने वाली, हुङ्कारों से राक्षसियों के गर्भ को गिराने वाली, ज्ञान के टङ्कार से यमराज के भय को हरण करने वाली माँ पराम्बा को, जो मेरे स्मृति पटल पर अङ्कित हैं उसको मैं क्यों नहीं भजूँ ?

भाव - महालक्ष्मी, महाकाली, महासरस्वती, स्वरूपिणी माँ का भजन किसे प्रियकर नहीं है । अर्थात् सबको प्रियकर है ।

विनम्राक्षीं साक्षीं विमलजलजाक्षीं सुनयनां
कृपेक्षापेक्षार्थी भयहरणशीलामनुभजे ।
सुनेत्रेणैकेण त्वमयि ! कुरु संसारतरणं
सहस्राक्षि ! श्यामे ! सुभर तिमिरोद्घाटनवरैः ॥ ५०॥
स्नेहशील नेत्रों वाली, सर्वजनसाक्षी, निर्मल कमल जैसे नयनों वाली, भय हरण करने वाली, माँ को मैं कृपा दृष्टि की कामना से भजता हूँ । हे हजार नेत्रों वाली! हे श्यामा! एक नेत्र की सुधादृष्टि से मुझे भी संसार सागर से पार लगाओ और अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले वरदान से मुझे भर दो ।

भाव - माँ! आपके सहस्राधिक नेत्र है । बस एक नेत्र से मुझ याचक का भी कल्याण कर दो ।

व्याकरण -कृपा +ईक्षा +अपेक्षा +अर्थी

त्वदीयं सौन्दर्यं सकलरमणीनामनुपमं
तुलातीतं रूपं सुकरुणसुधासागरतटं
न देवस्त्रिनेत्रो विरमति दिदृक्षावशगमाद्

कथं नेत्राभ्यां वा भवदतुलरूपं ननु जिहै ॥ ५१॥
हे माँ! आपका सौन्दर्य समस्त रमणियों में अनुपम है । आपका रूप अतुल्य सुधा सागर का तट है । जब भगवान शिव आपको अपने तीन नेत्रों से लगातार देखने की तीव्र इच्छा से निहारते रहते हैं, पर तृप्त नहीं होते । तब मैं दो नेत्रों वाला आपके अनुपम रूप को मातृकृपा का इच्छुक क्यों न देखूँ ?

भाव -भगवान शिव पर साधन (नेत्र)भी अधिक है और सामर्थ्य (देव शक्ति)भी अधिक है । वे आपकी छटा को लगातार निहारते है तो मैं अल्प साधन (नेत्र)व सामर्थ्य (मनुष्य शक्ति)वाला आपकी अद्भुत झाँकी का आनन्द क्यों छोड़ूँ ।

विधाताहीनस्सम्भवति शिवहीनोऽपि च नरः
परं शक्त्या हीनो भवति बहुधा व्याकुलमनः ।
अपर्णैका सेव्या त्रिभुवनतले शक्तिधवला
ततश्शान्तिं प्राप्याव्यवहितसुखं प्रापय भुवि ॥ ५२॥
व्यक्ति ब्रह्माहीन, या शिवहीन भी जी सकता है । परन्तु शक्तिहीन होने पर प्रायः व्याकुल चित्त हो उठता है । अतः शक्ति प्राप्ति के लिए त्रिभुवन में केवल शक्तिपुञ्ज भवानी की पूजा करो । और उनसे शान्ति को प्राप्त करके ब्रह्मानन्द का आस्वादन करो ।

भाव - ब्रह्मानन्द (अव्यवहित सुख)और उसके साधन की युक्ति शक्ति (पराम्बा)के अधीन ही है ।

न लोभो मोहो वा मदनमदजातं ज्वरभयं
न मानो द्वेषो वा तपनहिमबाधा ननु गता ।
न शोको हर्षो वा सुतयुवति जन्यं विचलनं
भवानीभक्तानां जगदभिनयं वाऽत्रा चलति ॥ ५३॥
माँ भवानी के भक्तों में न लोभ या मोह का भय, न कामवेग, न मान या द्वेष, न सर्दी गर्मी आदि द्वन्दभय, न शोक या हर्ष और न ही पुत्र, कलत्र सम्बन्धित व्याकुलता व्याप्त रहती है । वे तो जगत के जीवों के प्रति सद्यवहार का अभिनय मात्र करते हैं ।

भाव -माँ के भक्त संसार को अभिनय मञ्च तथा भक्ति को ही स्थायी मानते हैं ।

पुराकालात्कालोऽनवरतजगद्भक्षणरुचः
महाकालश्चक्रे दलति भुवनं तीव्रतरसा
भवभक्ता लोके परिहरणदक्षा यमभयं

सुतुष्टा बोलेभ्योऽनुपममधिकारं प्रददति ॥ ५४॥

सृष्टि के आरम्भ से ही काल जीवों का विनाश करता रहा है । महाकाल अपने चक्र में समस्त भुवन का तीव्रगति से पेषण कर रहा है । इतना होने पर भी हे माँ! आपके भक्त यमराज के भय को दूर करने का सामर्थ्य रखते हैं । यह आपकी महत्त्वा है कि आप अपने छोटे भक्तों को भी ऐसा अनोखा अधिकार प्रदान करती हो ।

भाव - माँ अपने भक्तों को यमराज को भी परास्त करने का अधिकार दे देती हैं ।

वराहप्राघातैश्छलमपि हिरण्याक्षरचितं
विलुप्तं सौराष्ट्रं झटिति कुलवैद्योपचरितम् ।
विधात्रे दत्ता ज्या सकलमथ मातुर्विलसनं
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ५५॥

वराह भगवान के आघातों से हिरण्याक्ष दैत्य का छल ऐसे ही लुप्त हो गया जैसे विष का प्रभाव तुरन्त कुलवैद्यों के उपचार से समाप्त हो जाता है । तब वराहावतार ने ब्रह्मा जी को हिरण्याक्ष से मुक्त कराई गई पृथ्वी सृष्टि रचना के लिए प्रदान की । हे माँ । यह सब आपका ही विलास था । आपने ही जगत रक्षा और राक्षसों के विनाश के लिए वराह का वेष रचा । आपको नमन करता हूँ ।

भाव -वराहावतार माँ का ही तेज था ।

हिरण्यक्रव्यादं वियति नखनिर्भिन्नमकरोत्
स्वबालं प्रहलादं विपदि कृतमाह्लादभरितम् ।
विचित्राविर्भूतं हि तव नरसिंहावतरणं
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ५६ ॥

जिसने हिरण्यकशिपु को आकाश में ही अपने नाखूनों से चीर दिया और अपने भक्त प्रह्लाद को आनन्दित कर दिया था । वह विचित्र रूप में खम्भे से प्रकट होने वाला नरसिंहावतार आप का ही स्वरूप था । आप ही जगत रक्षा व राक्षस विनाश के लिए विविध वेश धरती हैं । आपको नमन करता हूँ ।

भाव - नरसिंहावतार माँ का ही अवतरण है ।

क्व माहेयी दुग्धं जगति सुरगोवंशजगणः
क्व नीलग्रीवो वा हरिमणिरुचेर्रश्मिसुषमा ।
क्व लक्ष्मीपीयूषे यदि न भवदाकारकमठे
जगद्रक्षारक्षो क्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ५७॥

हे माँ! यदि आप कच्छपावतार लेकर समुद्रमन्थन में सहयोग न देती तो कहाँ से कामधेनु का अमृतमय दुग्ध और गोवंश होता, कहाँ से शिव नीलकण्ठ कहलाते, कहाँ से कौस्तुभ मणि की शोभा होती, कहाँ से लक्ष्मी और अमृत का प्राकट्य होता ? यह सब माँ की कृपा से ही सम्भव हो सका । आपको नमन करता हूँ ।

भाव -कच्छपावतार माँ का ही अवतरण है ।

यदा शस्त्रे शास्त्रे पतितमभवद् क्षत्रनिवहः
ऋषीणां नारीणामपचितवराङ्गे विचरणे ।
तदा शस्त्रं धृत्वा परशुमपरार्थे प्रकटितां
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ५८॥
जब शस्त्र और शास्त्र की मर्यादा से क्षत्रिय समूह रहित हो गया । ऋषियों के मस्तक छेदन तथा स्त्रियों से यौनाचार रूपी पापकर्म में निरङ्कुश क्षत्रिय लिप्त हो गए । तब असहायों की रक्षा के लिए परशु (फरसा)शस्त्र लेकर भगवान परशुराम के रूप में प्रकट होने वाली माँ पराम्बा जिसने राक्षस विनाश और जगत की रक्षा के लिए वेश धारण किया उनको नमन करता हूँ ।

भाव -भगवान परशुराम माँ का ही अवतार थे ।

विरामारामारा मदनयतिमायादिजगतां
दशग्ग्रीवाभाराद्रहितमकरोद्रावणतनुः ।
सुमर्यादागारो रघुपतिबलिष्ठो तव वपुः
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ५९॥
जो काम प्रसार के लिए विराम, संन्यासियों के लिए आनन्दस्वरूप, और मायादि जगत के लिए शत्रुस्वरूप हैं । जिन्होंने रावण के शरीर को दश सिरों के भार से मुक्त किया । जो मर्यादा का आगार हैं, बलिष्ठ हैं वे श्री रामचन्द्रजी भी आपका ही शरीरभूत हैं । जगत रक्षा व राक्षस विनाश के लिए विविध वेश धारण करने वाली माँ आपको नमन है ।

भाव - भगवान श्री राम माँ का ही स्वरूप है ।

व्याकरण - विराम +आराम +आराः

सुगीता गीता याऽखिलभुवनपीताऽमरसुधा
न कृष्णश्श्यामा सापि सुमधुरवंशीकरधरा ।
परित्रातुं साधोर्विघटयितुमम्बे खलदलं
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ६०॥

जिन्होन्नें उस भगवद्गीता को गाया जो समस्त भुवन के लिए सुधामय है । वह भगवान श्री कृष्ण नहीं थे । अपितु वंशी हाथ में धरण करने वाली श्री राधा जी ही थी । सज्जनों की रक्षा और दुष्टों का विनाश करने वाले श्री कृष्ण शक्ति का ही स्वरूप है । जगत की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए विविध रूपों को धारण करने वाली पराम्बा का मैं भजन करता हूँ ।

भाव - भगवान श्री कृष्ण साक्षात् ललिताम्बा ही हैं ।

अहिंसा सन्देशैर्दनुजमनुजान्तुष्टिमनयत्
दयादाक्षिण्यैर्वा प्रबलरिपुविद्वेषमजयत् ।
विशास्ता बुद्धो मारजिदपि तवैवाङ्गरचितः
जगद्रक्षारक्षोक्षयरचितवेशामनुभजे ॥ ६१॥
जिन्होन्ने अपने दिव्य अहिंसा के सन्देशों से दुर्जन -सज्जन सबको सन्तुष्ट किया । दया-दाक्षिण्यादि सद्गुणों से द्वेषादि षड्रिपु दल को जीता । वह सदुपदेष्टा इन्द्रिय विजेता भगवान बुद्ध आपके ही अङ्गों से उत्पन्न हुए थे । अतः दुष्ट दलन और भक्त भरण कर्त्री माँ का मैं भजन करता हूँ ।

भाव - सब अवतार माँ की अँगुलियों से ही उत्पन्न हैं (श्री ललिता सहस्त्रनाम स्तोत्रम्)

प्रणष्टे कोषाणां सुततरुणिसम्बन्धविफले
रमे! गौरि ! श्यामे ! नु करुणविलापाद् प्रथमतः ।
विपद्काले देव्यास्स्मरणवशगाया भयहरा
हि दिव्यामूर्तिर्वै सततमपि नः पातु विजया ॥ ६२॥
जब धन नष्ट हो जाता है । पुत्र कलत्र से सम्बन्ध टूट जाता है और जीव असहाय होकर आर्त्त स्वर से हे रमा ! हे गौरी ! हे श्यामा, पुकारने लगता है, उस पुकार से पहले ही (माँ की तरफ ध्यान मात्र होने पर भी)विपत्ति काल में स्मरण मात्र से भय दूर करने वाली श्रीमाता जी की दिव्य विश्वविजयी मूर्ति सतत हमारी रक्षा करे ।

भाव -माँ चिन्तन मात्र से ही प्रसन्न होकर पुकारने से पहले इच्छा पूर्ण करती है ।

मनीषानैपुण्यं खलु चलति यावद् मतिमतां
त्वदीयाभाभासं प्रभवति न तावद् विमनसः ।
यदा विद्याबुद्धेर्बलमभिभवाद् सज्जनगणः
सदा नौति स्तौति प्रणमति नु दुर्गामथ गतिः ॥ ६३॥

जब तक बुद्धिमानों की बुद्धि चलती है तब तक माँ की महिमा का आभास मात्र भी नहीं होता । जब सज्जनवृन्द अपनी विद्या बुद्धि आदि के अहङ्कार को पराजित समझकर दुर्गा को सतत नमन करता है, स्तुति करता है तब जाकर उसको आत्मज्ञान होता है ।

भाव -माँ का रहस्य विद्या -बुद्धि बल से नहीं अपितु आत्मसमर्पण से ही ज्ञात हो सकता है ।

विदित्वा सद्विद्यां तव चरणसेवाऽमृतकलां
विरच्य स्तोत्रादीन् हि सदनसपर्यामतनिषुः ।
अनार्या भिद्यन्ते यतिपतिमतिस्तम्भितनयाः
मताद्वैतं स्थाप्य प्रवचनमभूत्तत्त्वमसि भो ॥ ६४॥
जगद्गुरू आद्य शङ्कराचार्य जी ने माँ के चरण सेवा रूपी अमृतकलात्मक विद्या को जानकर, स्तोत्रादि की रचना करके पञ्चसदन पूजा का प्रचार किया । सन्त शिरोमणि जगद्गुरू की ऋतम्भरा प्रज्ञा से अनार्य (अवैदिक) लोग पराभूत हो गए और तब उन्होंने आर्यवर्त में एकमात्र वैदिक सनातन अद्वैत मत की स्थापना करके उपदेश किया कि वह परमात्मा तुम ही हो ।

भाव -जगद्गुरू शङ्कराचार्य जी भगवती के ही उपासक थे ।

कनीफानाथश्चर्पटिभरभरीनाथवरदाः
गहीनीनाथो भारतिभरथरीगोरखयतिः ।
जलेन्द्रो मत्स्येन्द्रादिगुरुनवनाथास्तव सुताः
तवाज्ञाविज्ञाने विदधति नु रक्षां भवभयाद् ॥ ६४॥
सर्वसमर्थ कनीफानाथ, चर्पटिनाथ, भरभरीनाथ, गहीनीनाथ, भारतिनाथ, भरथरीनाथ, गोरखनाथ जालन्धरनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ ये नौ नाथ माँ पराम्बा के ही पुत्र है । ये सब माँ की आज्ञा के संरक्षण में ही भवभय से जीवों की आज भी रक्षा करते हैं ।

भाव -नवनाथ मातृशक्ति के ही उपासक हैं ।

विरूपाचौरङ्गीसरहकिलपानागबुधपाः
लुहीपाडेङ्गीपामहिकुसुलिनागार्जुनसमाः ।
इशलीपा डोम्भीपा करहमणिभद्राः पणहपा
अमी सिद्धा वृद्धास्तव चरणबद्धा गिरिसुते ॥ ६६॥

हे माँ! विरूपाक्ष, चौरङ्गी, सरहपा, किलपा, नागपा, बुधपा, लुहीपा, डेङ्गीपा, महिपा, कुसुलिपा, नागार्जुन, शलीपा, डोम्भीपा, करहपा, मणिभद्र और पणहपा आदि ज्ञानवृद्ध ८४ सिद्ध भी आपके चरणों की सेवा में बन्धे हुए हैं ।

भाव -समस्त सिद्ध माँ की ही शरण में हैं ।

यदा ध्यानूभक्तश्छुरति निजशीर्षं चरणयोः
यदा ज्यानीचौरो हरति धनिनां दर्पकरणम् ।
यदा बङ्गे रामे भुवि परमहंसे पथि गते
तदा तुष्टा तेभ्यश्छविशशिमुखीसम्मुखमभूद् ॥ ६७॥
जब ध्यानू भक्त माँ के चरणों में अपना शीश चढ़ाते हैं, जब ज्यानी चौर धनिकों के अहङ्कार के साधन (धन)को गरीबों को बाँटने हेतू हर लेते हैं, जब बङ्गाल के दक्षिण काली मठ में रामकृष्ण परमहंसों के रास्ते पर चल पड़ते है तभी प्रसन्न होकर माँ पूर्णेन्दुमुखी भगवती उनको दर्शन देकर कृतार्थ कर देती हैं ।

भाव -पूर्ण समर्पण ही देव प्रत्यक्षीकरण का साधन है ।

स कर्त्ता काव्यानां हि सकलगुरूणामतिबलः
प्रयासेनावाप्तो भुवि खलु महाशैवपदवीम् ।
महातन्त्राचार्यं तमभिनवगुप्तं बहुमतं
स्मरात्पूर्वं तुष्टां सुजनवरदां विस्मरति कः ?॥ ६८॥
जो काव्यादि के निर्माण कर्त्ता, सद्गुरूओं में श्रेष्ठ हुए । जिन्होन्ने अपनी तपस्या से महाशैव की पदवी प्राप्त की । उन महातन्त्राचार्य महामहिम जगप्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त को याद करने से पूर्व उन पर कृपा करने वाली, उन्हें वरदान देने वाली, उनकी सेवा से सन्तुष्ट माँ भगवती को कौन भूल सकता है ?

भाव -आचार्य अभिनव गुप्त पर भी माँ की विशेष कृपा थी ।

महामाया दुर्गा त्वमसि चितिरूपा हिमवती
पराशक्तिश्श्यामा विजयपरमज्योतिरमला ।
त्रिकोणे ऐं ह्रीं श्रीं ललितवदना षोडशकला
जगन्मातो देहि स्मरशरणदे! पुत्रपदवीम् ॥ ६९॥
हे माँ! आप महामाया, दुर्गा, चितिरूपा, हैमवती, पराशक्ति, श्यामा, विजय की परमज्योति, निर्मला आदि नामों से विख्यात हो । आप श्रीचक्र के त्रिकोण में ऐं ह्रीं श्रीं स्वरूपिणी, सुमुखी, षोडशी स्वरूपिणी हो । हे माँ! आपने कामदेव को

भी शरण दी है, कृपा मुझे भी पुत्र पद प्रदान करें अर्थात् मुझ निष्काम को पुत्र पद देना आपके लिए सहज ही है ।

भाव -बीज (ऐं - ह्रीं - श्रीं)का रहस्य गुरूमुख गम्य है इसे परम्परा से समझें ।

त्रयी शुद्धा शक्तिस्त्रिपुररमणीज्ञानकलिका
भवानी श्रीविद्या परमपुरुषा कारणगता ।
शिवा काली तारा भुवि परमधामा सुललिता
जगन्मातो देहि स्मरशरणदे! पुत्रपदवीम् ॥ ७० ॥
आप त्रयी, (वेदत्रयी -गुणत्रयी -त्रिपुरा), शक्ति, त्रिपुराधिष्ठात्री, ज्ञानकला, भवानी, श्रीविद्या, परमपुरुषा, कारणभूता, शिवा, काली, तारा तथा जगत का परम धाम ललिता त्रिपुर सुन्दरी हो । हे माँ आपने कामदेव —

भाव -माँ ही विविध देवियों के रूप में विराजित हैं ।

सुमेरौ श्रीचक्रेऽभवदगणित क्षेत्र जननी
महाराज्ञी यन्त्रे प्रकटितशिवे! शोभितशिवे !
सदा प्रेतासीनेऽभयकरि ! परब्रह्ममहिषि !
जगन्मातो देहि स्मरशरणदे! पुत्रपदवीम् ॥ ७१ ॥
हे माँ! आप सुमेरु पर्वत पर श्री चक्र में असङ्ख्य लोकों की रचना करती हो । हे महारानी! हे सुन्दरी ! हे श्री यन्त्र में प्रत्यक्ष स्वरूपिणी! हे पञ्च प्रेताधिष्ठित ! हे अभय देने वाली ! हे कामदेव को शरण देने वाली माँ! मुझ निष्काम को भी पुत्र पद प्रदान करें ।

भाव - समस्त ब्रह्माण्ड माँ का ही विलास है ।

स्तुतौ ऐं ऐं ऐं ऐं नगपतिसुता रम्यवदना
मतौ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं सकलशिवशक्त्यैक्यसुलभा ।
कलौ क्लीं क्लीं क्लीं क्लीं विकट तटि ! कालीकुलमुदा
अवर्णाऽऽविर्भूता कचटतपवर्गा त्वमसि मा ॥ ७२ ॥
स्तुति काल में आप ऐं बीजात्मक सुन्दर मुख वाली पर्वत राज पुत्री हैं । बुद्धि में आप ह्रीं बीज में शिवशक्ति की एकता का सरल आभास कराने वाली हैं । कलियुग में आप क्लीं (क्रीं)बीज में भयानक रहस्यों वाली, काली सम्प्रदाय को आनन्द देने वाली हैं और आप वर्ण रहित होने पर भी क-च-ट-त पवर्गादि रूप में प्रकट होने वाली मातृका स्वरूपा हो ।

भाव -आप ही समस्त मन्त्र एवं मातृका स्वरूपिणी हैं ।

रणैरँ रं रं रणति शठशीर्ष प्रदलनैः
भुजैर्भ भं भं भं भुजति रिपुजाले प्रचलनैः ।
वधैर्व वं वं वं वधति परपक्षं प्रतिपलैः
शुभैस्सं सं सं सं सुरति निजपक्षं विहसनैः ॥ ७३॥
हे माँ! आप विनाशक गति से शत्रु के सिर पर चढ़ाई करती हैं । तीव्र प्रहार करने वाली भुजाओं से शत्रु जाल समाप्त करती हैं । प्रतिक्षण प्रहारों के द्वारा शत्रुसमूह का संहार करती हैं और अपने कल्याण कारक हासों के द्वारा अपक्षे पक्ष को सुख देती हैं ।

भाव -रं, भं, वं, सं आदि बीजों का अर्थ सम्प्रदायानुसार गुरुमुख से समझेम् ।

महायोगी देवीं सितशशिकलावर्णरमणीं
वियोगी संसारे हि तिथिमनुवर्णेन ललिताम् ।
लसद्बालारूपां जपति नृगणस्त्र्यक्षरमनुं
अगम्याज्ञानैर्वा परमगुरुगम्यामनुभजे ॥ ७४॥
महायोगी भगवती को पूर्णचन्द्रकला (षोडशी)मन्त्र रूप से, वियोगी संसार में रहता हुआ भी तिथि वर्णात्मक (पञ्चदशी)मन्त्र से, साधारण भक्त तेजस्वी त्रिवर्ण (बाला मन्त्र)से भजता है । माँ भगवती अज्ञान से अगम्य है परन्तु परमगुरू के मुख से ही गम्य है ।

भाव - माँ के बाला, पञ्चदशी, षोडशी मन्त्र गुरु मुख से ही ग्रहण करके उपास्य हैं ।

न सच्छास्त्राभ्यासैर्हवनजपविप्राशनशतैः
न तीर्थेष्वावासैर्हरिहरकथाकर्णगमनैः ।
निलीनात्मा भाति प्रतिपदि हि नाऽऽडम्बरधरैः
महामायापादे पतनमथ यावन्न भवति ॥ ७५॥
सद् शास्त्राभ्यास, हवन, जप, ब्राह्मण भोजन, तीर्थसेवा, स्नान, हरि हर कथा श्रवणादि से यह आत्मज्ञान नहीं होता । न ही विविध आडम्बर धारण करने से यह छिपा हुआ आत्मा प्रकट होता है । जब तक महामाया के चरणों में आत्मसमर्पण नहीं होता तब तक आत्म ज्ञान नहीं होता ।

भाव - माँ की शरणागति ही आत्मज्ञान का साधन है ।

महामोहाघातः प्रबलरिपुसङ्घातपतनं

वृथैवाशापाशं कनकतरुणीकल्कनकथा ।
यशोलिप्सादास्यं धनजननतृष्णाभवभयं
इदं सर्वं जालं तव चरणपीयूषमहरद् ॥ ७६ ॥
मोहान्धकार पीड़ा, षड् रिपु जाल में गिरना, आशा पाश बन्धन, धन -स्त्री, रूपी दलदल की मनोहर कथा प्रेम, यश की कामना की अधीनता, ध न-परिवार की तृष्णा और भवभय, इन समस्त मोहात्मक जाल को श्रीमाता के चरणों से निकलने वाली अमृत धारा ने नष्ट कर दिया है ।

भाव - माँ का चरणामृत समस्त मोहमाया को हर लेता है ।

महामायाजालं विततमतिसूक्ष्मं दृढतमं
यशोमोक्षाकाङ्क्षा क्वचिदतुलसिद्धेर्मधुरता ।
जगन्मातो याचे न जगति कुटुम्बादिगरलं
सदाहं संयाचे तवचरणपीयूषलहरीम् ॥ ७७॥
महामाया का जाल बहुत सूक्ष्म परन्तु मजबूत और विस्तृत है । कहीं यश या मोक्ष की आकाङ्क्षा, कहीं अनुपम सिद्धियों की मधुरता है । हे माँ जगदम्बा ! मैं आपसे सांसारिक परिवारादि के विष की कामना नहीं करता । परन्तु आपके चरणामृत लहरी की कामना मुझे अवश्य है ।

भाव - माँ का चरणामृत सर्वोपरि है ।

ललाटे सौभाग्याभयदतिलकं कुङ्कुमयुतं
मुखे मन्दं मन्दं स्मितमृदुधरं बिम्बमधरम् ।
अरालोद्याने वै शिखिनमिव ताटङ्कनटनं
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ७८॥
मस्तक पर सौभाग्य रूपी अभय स्वरूप कुङ्कुम का तिलक, मुख पर मन्दहास्य से कोमल बिम्ब फल जैसा अधरोष्ठ, केश रूपी मनोहर बगीचे में कर्णाभूषण रूपी मयूरों का नर्तन, ऐसा दिव्य स्वरूप है मेरी माता का । आप शिवरूपी अङ्गो वाली तथा शिव के वामाङ्ग में निवास करने वाली हो । आप मुझ अपने पुत्र को भी अपनी शरण प्रदान करो ।

भाव -आप शिव को आश्रय देने वाली है अतः अपने पुत्र को भी अपनी शरण प्रदान करें ।

जटाजाले चन्द्रो धरति घनमायाऽऽवृतछविं
चिताभस्मालेपैरभिभवति शैलेशशिखरम् ।

विराजन्तं राजन्तममरशिवं धारयति या
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ७९॥
आपके जटाजाल में चन्द्रमा वैसे ही सुशोभित होता है जैसे बादलों से घिरने पर । चिता की भस्म के लेप से शोभित शरीर पर्वतराज हिमालय को भी जो तिरस्कृत करता है, ऐसे तेजस्वी सदाशिव को अपने अर्धशरीर में आपने आश्रय दिया है । आप शिवाङ्गी है वामाङ्गी है, मुझ अपने पुत्र को भी स्वीकार करो ।

भाव -पूर्ववत्

प्रबाधाबाधार्थ प्रभवति शिवार्द्धं तव वपुः
सुभोगान्दानार्थं विलसति चिदानन्दलतिका ।
शिवाशर्वाभ्यां वापि लसितमखण्डेन वपुषा
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ८०॥
आपका आधा शिवमय शरीर विशेष बाधाओं को शान्त करने में समर्थ है और आधा गौरी शरीर चिदानन्द लता के समान भोग-मोक्ष प्रद है । आप अर्धनारीश्वरा रूपी अखण्ड शरीर से सुशोभित हैं । आप शिवाङ्गी है-

भाव - माँ ही अर्धनारीश्वरा हैं ।

सुधासिन्धो ! मातः ! त्वमयि ! बहुधा ख्यातिमगमः
पिपासां जिज्ञासां नु मम हृदयाशां प्रशमय ।
पुनर्पोन्यैः बद्धं तमतिमृतिमायाभयभरं
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ८१॥
हे सुधा सागर! हे माँ! आप विख्यात है अतः मेरी प्यास और मन की जिज्ञासा व आशा को शान्त करो । बार-बार मृत्युचक्र में भयभीत अपने पुत्र को अपनी शरण प्रदान करो । आप शिवाङ्गी है–

भाव - आप सर्वसमर्था है, कृपया मुझे अपना लो ।

नु दण्डायन्ते येऽखिलभुवनमातुश्चरणयोः
तदैषां पाप्मानो ननु भुवि पतन्तीह सह तैः ।
महाघोराद्घोरं सकलमघकोषं व्ययकरी
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ८२॥
जो श्रीमाता के चरणों में दण्डवत् प्रणाम करते है उनके पाप भी साथ में धराशायी हो जाते हैं । आप महापातकों के समूह को भी नष्ट करने वाली हैं । आप शिवाङ्गी है

भाव - माँ के चरणों में लेटने वालों के पाप भी जमीन पर गिर जाते है और जीव पापमुक्त हो जाता है ।

गणेशे चातुर्यं वहति बहुकाव्यादिशिखरं
महासेने शौर्यं जयति दनुजानामपि बलम् ।
इदं भेदं भित्त्वा सदयमवलोक्योऽहमधुना
शिवाङ्गी वामाङ्गी निजशरणमङ्गी कुरुसुतम् ॥ ८३॥
आपका एक पुत्र गणेश काव्यादि कलाओं के शिखर पर विराजित होकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं । दूसरा पुत्र कार्तिकेय राक्षसों का विजेता होने से शूरवीरों में श्रेष्ठ है । हे माँ! मैं भी तो आपका पुत्र हूँ । अतः इस भेदभाव को छोड़कर दयादृष्टि से मुझ पर दृष्टिपात करें । आप शिवाङ्गी है

भाव - माँ! मुझे भी अपना पुत्र मानकर कृपा करेम् ।

विहारे वाऽऽहारे पथि गमनकाले जननि! वा
विचारे वाऽऽचारे हवनहविदाने भगवति !
प्रदाने वाऽऽदाने परमनवधाने भुविपतन्
स्वभावो दुस्त्याज्योऽशिवशिवशिवेति स्खलति वाक् ॥ ८४॥
भ्रमण हो या भोजन या यात्रा काल हो, विचार हो या आचरण या यज्ञाहुति काल हो । आदान हो या प्रदान अथवा असावधानी से भूमि पर स्खलन हो, तब भी हे माँ! स्वभाव त्याग कठिन है क्योङ्कि सभी दशाओं में मेरे मुख से शिव -शिव -शिवा" ऐसा शब्द निकलता है ।

भाव - माँ! आपका नामजप ही मेरा स्वभाव बन चुका है ।

कुलाचारैर्हीनो जपतपसि दाने न कुशलः
कदाचारे लीनो मम मनसि भक्तिर्न विपुला ।
कृपापात्रत्वं नेति सदसि विहाय त्वमतुले !
सदा वै पुत्रत्वं सततमवधेहि स्मितमुखि ! ॥ ८५॥
माँ! मैं कुल व आचार से रहित हूँ । जप-तप -दान में भी निपुण नहीं हूँ । कदाचार (पापाचरण)में लिप्त मेरे मन में अत्याधिक भक्ति भी नहीं है । आपकी सभा में मेरी पात्रता -अपात्रता का विचार न करके मेरी पुत्रता (कि मैं आपका पुत्र हूँ)का ही ख्याल करके मुझ पर कृपा करो ।

भाव - माँ! मेरे विषय में पात्रापात्र की अपेक्षा पुत्रता को ध्यान में रखेम् ।

पतिस्ते ब्रह्माण्डं जनिकरणविध्वंसनपटुः

मनीषाविघ्नानां करणहरणौ वै तव सुतौ
फलं भक्तेरल्पं न भवति धराधीशतनये !
सुविज्ञानां गण्योऽहमभवमतीवाल्पमतिमान् ॥ ८६॥
हे माँ! आपका पति ब्रह्माण्ड को उत्पन्न एवं नष्ट करने में समर्थ है । आपके दोनों पुत्र क्रमशः बुद्धिदान एवं विघ्नहरण में समर्थ हैं । हे! पर्वतराज सुता! भक्ति का फल सामान्य नहीं होता क्योङ्कि मैं मन्दबुद्धि भी आपकी कृपा से बुद्धिमानों में गिनती करने योग्य सा हो गया हूँ ।

भाव - माँ का पुत्र बनने पर उपरोक्त फल तो अवश्यम्भावी ही हैं ।

क्व लोके शाक्तानां सुमधुरिमपीयूषमनघं
क्व कृष्णः पक्षाणां बलरहितकाकोऽल्पवयसः ।
भवद्दीक्षापाङ्गाद् हरसखि ! हरेर्वायसमिव
अपात्रं हे ! मातस्सरसिजसुधापात्रमभवम् ॥ ८७॥
हे माँ! कहाँ तो संसार में शक्ति उपासकों का मधुर अमृत अर्थात् आपकी भक्ति और कहाँ मैं पङ्खादि बल से रहित छोटा काला कौआ । (पक्ष में)पक्ष (सम्प्रदायादि)के बल से रहित थोड़ी उम्र का कृष्ण (लेखक)नामक बालक । हे शिव पत्नी! आपकी दीक्षा दृष्टि से ही मैं वैसे ही अमृत का अधिकारी हो गया जैसे भगवान श्री राम का कौआ (काक भुसुण्डि जी)भक्ति रूपी सुधा के पात्र हो गए ।

भाव -स्पष्टमेव ।

गणेशायार्यम्णे पुनरपि नमो लोकपतये ।
नमस्ते साम्बायामरविभुशिवायादिगुरवे ।
पुमान्नारीभेदैर्हि रहितपरब्रह्मपदगे
नमश्श्यामादण्डासहितललिते! कल्पतरवे ॥ ८८॥
गणेश, सूर्य, विष्णु, शक्ति सहित व्यापक आदिगुरू शिव को नमस्कार है । पुरूष व नारी के भेन्दों से रहित परब्रह्म स्वरूपिणी, श्यामा व दण्डा सहित हे कल्प वृक्ष स्वरूपिणी माँ ललिताम्बा ! आपको नमन है ।

भाव -माँ सगुण रूप में ही पञ्चाम्नाय स्वरूपा हैं । निर्गुण में परब्रह्म ही है ।

सुखं वा दुःखं वा बहुधनभरं वाऽविभवता
विरक्तासक्तं वा जगति सबलं वा बलवियुक् ।
हि निःश्वासोच्छ्वासैरपि रचय मालामनुपमां
समाहृत्याज्ञानं भज सततमम्बामयि ! मनः ॥ ८९॥

सुख हो या दुःख, धन या निर्धन, विरक्त हो या आसक्त, बलवान हो या निर्बल, हे मेरे मन ! श्वासों की अनोखी माला बनाकर अज्ञान को दूर करके लगातार पराम्बा भगवती का भजन करो ।

भाव - प्रत्येक अवस्था में माता का भजन चलता रहना चाहिए । प्रत्येक श्वास में स्मरण होता रहे ।

दिवा वा रात्रौ वा सततमनुभूतौ प्रतिदिनं
मृडानीं रूद्राणीमनवरतवन्द्यामनुभजे ।
तवापर्णे ! कर्णे प्रविशति कदाचिन्मम वचः
कदाचिन्मातङ्गी मम वचनतुष्टा नु भविता ॥ ९०॥
दिन हो या रात, मैं प्रतिक्षण पूज्या माँ मृडानी, रूद्राणी का भजन करता हूँ । हे माँ! कभी न कभी तो आपके कान में मेरा वचन प्रवेश करेगा, कभी न कभी तो आप मेरे भजन स्मरण से प्रसन्न हो ही जाओगी । ऐसा मेरा विश्वास है ।

भाव - माँ अपने भक्तों से प्रसन्न हो ही जाती है ।

जगन्मातर्मातो मरणरहितात्मेति कथितः
भवद्दर्शोत्कण्ठे मम मनसि धैर्यं सुविपुलम् ।
पुरा वा पश्चाद् वा भुवि जननजन्मान्तरमपि
कथञ्चिन्नाकिञ्चन् तव चरणभक्तो नु भविता ॥ ९१॥
हे जगज्जननी! आत्मा अमर है मैंने ऐसा सुना है, और आपके दर्शनों की प्रतीक्षा के लिए मेरे मन में धैर्य बहुत है । अब या बाद में, इस जन्म या जन्मान्तर में, कभी न कभी तो मैं क्षुद्र जीव आपके चरणों का दास बन ही जाऊँगा और आप प्रसन्न हो ही जाएगी ।

भाव - माँ भक्तवत्सला हैं ।

व्याकरण - कथञ्चिद् +न +अकिञ्चन्

नियुक्ता गीर्वाणा भुवनपतिसेवातिपथिषु
महामायाजाले भ्रमितमिव शोचन्ति भवजाः ।
प्रियं पुत्रं मत्त्वा निजचरणसामीप्यवरदे!
सुरम्याङ्के स्थाप्य क्षयरहितहर्षं जनय मे ॥ ९२॥
आपने देवों को महादेव की सेवादि कार्यों में नियुक्त कर रखा है । जीव आपके मायाजाल में भ्रमित हो रहे हैं । हे चरण सामीप्य देने वाली माँ! मुझको अपना प्रिय पुत्र जानकर अपनी गोद में बैठाकर मुझे अक्षय हर्ष प्रदान करो ।

भाव - माता ने सब देवों, जीवों को व्यस्त कर रखा है । मुझे व्यस्त न करके आपकी गोद का आनन्द प्रदान करें ।

रते नेत्रे हृष्टे भवदतिमनोल्लासिततनौ
सुकर्णौ तृप्तौ वै गुणरसघटैः पानकरणाद् ।
इमौ द्वौ द्वावित्थं समुपपदितुं जेतृपदवीं
रसज्ञा ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति जपति देवीं हि तरसा ॥ ९३॥
आपके मनोहर शरीर की शोभा में लीन मेरे दोनों नेत्र आपका दर्शन कर प्रसन्न हैं । मेरे दोनों कान आपके गुणों का श्रवण करके सन्तुष्ट हैं । ये दो-दो हैं और मैं अकेली, यह सोचकर ही जिह्वा इनको (नेत्र -कान) जीतने की इच्छा में और अधिक वेग से ह्रीं ह्रीं ऐसा माँ का नाम जपती है ।

भाव -मेरी जिह्वा निरन्तर आपका भजन करती है ।

न वित्ते मत्तृष्णा मलिनमपि चित्तं न रिपुभिः
न रामाभोगेषु भ्रमति नु यतीव स्थिरमनः ।
न विज्ञानापेक्षा जनपदसुखेच्छापि न पुनः
भवद्भक्तिं देहि स्तुतिमधुरतुष्टे ! प्रतिफलम् ॥ ९४॥
माँ! मेरी न धन में तृष्णा है, न मेरा मन काम क्रोधादि शत्रुओं से मैला है । संन्यासी की तरह स्थिर मेरा मन स्त्री सौन्दर्यादि भोगों में भी भ्रमित नहीं है । राज्य सुख व चमत्कारों की भी मुझे इच्छा नहीं है । हे मधुर स्तुति से प्रसन्न होने वाली माँ! इस रचना से प्रसन्न होकर मुझे आप अपनी भक्ति ही प्रदान करें ।

भाव - मैं केवल आपकी निर्मल भक्ति का याचक हूँ ।

अनेकैर्धीमद्भिस्स्तुतिवचनगाथास्तव कृता
इमा विद्यन्ते वै कनकरजताभूषणमिव ।
यथा रम्ये भाले लुभति तिलकं केसरयुतं
तथाप्येतत्स्तोत्रं तव भवतु सौभाग्यसुषमा ॥ ९५॥
माँ! अनेक विद्वानों ने आपकी स्तुति, स्त्रोत रचना की हैं । ये सभी स्तुतियाँ स्वर्ण, चाँदी आदि के आभूषणों के समान आपको प्रिय हैं । जैसे सुन्दर मस्तक पर केशर का तिलक शोभायमान होता है वैसे ही मेरे द्वारा रचित यह स्त्रोत आपके सौभाग्य की शोभा बढ़ाने वाले तिलक के समान आपको प्रिय होवे ।

भाव - मेरा यह स्तोत्र स्वर्ण रजत आभूषण तो नहीं है पर आपके सौभाग्य को चार चाँद लगाने वाले तिलक (माङ्ग)के समान आपको प्रिय होवें ।

चतुर्वेदैस्साङ्गैरुपनिषदि वा ब्राह्मणपदैः
पुराणैरारण्यैर्गृहकथनवार्तास्तवरवैः ।
पुरावृत्ताख्यानैस्स्तवनरचना या तव कृता
मया तत्तत्स्तोत्रं मनसि कथितं नन्दतु शिवे ! ॥ ९६॥
हे माँ! साङ्ग चारों वेदों के द्वारा, उपनिषद में, ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा पुराण-आरण्यक या गृह सूत्रों के द्वारा प्राचीन आख्यानों के द्वारा जो स्तोत्र की रचना आपकी सेवा में हुई हैं, मैं उन्हीं स्तुतियों को मानसिक रूप से आपके लिए कहता हूँ, आप मुझ पर प्रसन्न हो जाओ ।

भाव - इस स्तोत्र से आपको पुरातन समस्त स्तोत्रों का भी भाव प्राप्त हो ।

यदङ्किन्या लेखं यदपि मनसा चिन्तितवचः
यदुक्तानुक्तं वापि विवरणमम्बाविषयजम् ।
यदत्रक्षीणं तद् मम भवतु सौख्यं तव शिवे !
भवानि ! त्वां स्तोतुं प्रभवतु सदा मे स्तुतिरियम् ॥ ९७॥
हे भवानि ! जो मेरे मन में सोचा हुआ तथा लेखनी से लिखा हुआ है । आपके विषय में कहा या न कहा हुआ विवरण इस स्तोत्र में है । उसमें यदि न्यूनता है तो वह मेरे कारण है और यदि विशेषता है तो वह आपकी कृपा के कारण है । फिर भी मेरी यह स्तुति सदैव आपको प्रसन्नता देने वाली होवे ।

भाव - मेरे स्तोत्र से आप सर्वदा प्रसन्न हो ।

न रम्यं सौन्दर्यं ललितपदबन्धं न विहितं
न साम्यं शब्दानां न मधुरसवृत्तैर्लययुतम् ।
इयं सूनोरम्बां प्रति विकसितस्नेहकमलं
सदा भावाधिक्यं हि सकलमभावं विजयते ॥ ९८॥
न इसमें रमणीय सौन्दर्य है, न ललित पदों का बन्धन है । न शब्दों की समानता है और न मधुर रस व छन्दों की लय इसमें है । यह स्तोत्र पुत्र का माँ के प्रति विकसित प्रेम का कमल है । क्योङ्कि भाव की अधिकता सभी अभावों पर विजय प्रद होती है ।

भाव - इसमें कमियाँ रहने पर भी यह मन के भावों से भरपूर है । यही इसकी विजय प्रशस्ति है ।

ममेमा मा मा मा मम मम ममामा ममिम माः
ममामामं मे मेऽमम मम ममामूमिममुमे ।
मिमे मामी मामूमममममामीम मम मे !
मामामां मीमामोऽमुममुमुममामा ममिममोम् ॥ ९९॥

ममेमा मा मा मा मम मम ममामाः ममिम माः १
मम इमाः माः मा माः मम मम मम अमाः ममिम माः ।
मम = मेरी मम = अपनी
इमाः = ये
माः = माताएं मम +अमाः =अहङ्कार
पूर्ण इन्द्रियों से युक्त (हम)
मम = केवल मेरी ही
माः = माताएं
मा = नहीं हैं माः = माँ तक
मा = नहीं
ममिम = नहीं पहुँच सके ।

व्याकरण - ममिम मा माने लिट उ. पु. बहु ।

भाव - यह आदिशक्ति विश्वमाता है, जब तक हम अहं आदि पाशग्रस्त है तब तक इनका पार पाना असम्भव है । (आदरार्थ बहुवचनान्त प्रयोग हैं)

ममामामं मे मेऽमम मम ममामूमिममुमे २
मम अम आमं मे! मे अमम मम मं आ अमूं इमं उमे ।
मे! =हे माँ
हे उमे!= हे उमा देवी
अमम = सरलतापूर्वक (बिना कष्ट दिए)
मम = मेरे
इमं = इस (को)
आमं = रोग को (भवबन्धन को)
आ = सर्वव्यापक
अमूं =इस को
मम-मं = ममता रूपी झूठी खुशी को
मे = मेरे हितार्थ
अम =नष्ट कर दो ।

व्याकरण अम = अं खादने -लोट म. पुः एक ।

भाव -हे माँ मेरे समस्त दुर्गुणों (क्रोध - ममता - भवादि रोग) को सरलतापूर्वक दूर कर दो ।

मिमे मामी मामूममममममामीम मम मा । ३
मिमे मामी मां ऊं अमं अममं आमीम मम मा ।
मामी = मेरी   मां =माँ को
ऊं = व्याकुलता पूर्वक मिमे = पुकारता हूँ
मम मे! = मेरी माँ!   अमं =मुझ दास की ओर
अममं =वैरागी की ओर आमीम = आ जाओ
व्याकरण - मिमे = माङ् शब्दे माने च जुहो. आत्मे. लट्. उ. ए ।
आमीम = आ+मीं गतौ-भवा. परस्मै. लोट म. ए ।

भाव - हे माँ! मुझ विरक्त की पुकार सुनो और मेरे ऊपर कृपा करो ।

ममामां मीमामोऽमुममुममामा ममिममों ४
मम अमां मीमामः अमुं अमुं उं अमा माः मं इमं ओं
इमं = इस
मं = चिदानन्द (को)
अमुं =इस
उं = अव्यय (जिसका कोई व्यय नहीं है पूर्ण ब्रह्म को)
ॐ =ॐ कार को
मम = मेरी, अमुं = उस
अमां = असीमित माँ के रूप में
अमा माः = ब्रह्मा-विष्णु-शिव के साथ
मीमामः = आह्वान करते है ।
व्याकरण = अमा = सह, माः (मश्च मश्च मश्च = माः)
मीमामः = मीं - भवा लट् उ. पु. बहु ।

भाव - वह माँ ही परब्रह्म ओङ्कार है हम त्रिदेवों सहित उसका गुणगान करते हैं ।

प्रसन्नात्मारामो विमलमनसा भक्तिभरितः
सुमध्वानन्देनोपहरति गिरा श्लोकशतकम् ।
विनाव्यक्ताधात्री स्पृहणकथनात्पूर्वमतिदा

यशश्श्रीर्वर्चस्वं सुतयुवतिमोक्षं दिशति तम् ॥ १००॥
जो व्यक्ति प्रसन्न होकर निर्मल मन से भक्ति भाव पूर्वक इन सौ श्लोकों का उपहार माँ को देता है (अर्थात् गायन करता है)बिना कहे ही समझने वाली माँ ललिताम्बा, इच्छा व्यक्त करने से पहले ही स्तुति कर्त्ता को यश लक्ष्मी पद पुत्र -स्त्री आदि भौतिक सुख और मोक्ष पद को प्रदान करती हैं ।

भाव - माँ अन्तर्यामी हैं । वह भक्त का योगक्षेम का ध्यान रखती हैं ।

पिता जोगीरामः युगलमथ लीलावतिवरा
भवे योगीराजावतरमथ लीलावतियुतम् ।
महद्दावाग्नावपि गुरुजयरामो हिमकरः
ददन्दीक्षादानं कनकमकरोद्बालकनकम् ॥ १०१॥
मेरे पिता जोगी राम व माता लीलावती मानों योगीराज (सदाशिव) एवं लीलावती (ललिताम्बा)का ही प्रतिरूप हैं । और संसार रूपी अग्नि की पीड़ा से मुक्ति दिलाने वाले चन्द्रमा के समान पूज्य सद्गुरुदेव आचार्य श्री जयराम जी महाराज धन्य हैं जिन्होंने मन्त्र दीक्षा देकर मुझ गुणहीन बालक को तेज से परिपूर्ण कर दिया ।

भाव - कनक (ढाक वृक्ष)से स्वर्ण में परिवर्तित कर दिया ।

इति श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्रिणा विरचितं श्रीललिताशतकं सम्पूर्णम् ।

With permission from the
Author Dr. Krishnachandra Shastri
Editor Shrimati Kusum Shastri

Copyright Shrimati Kusum Shastri

Proofread by Brahatha Mohan

Shri Lalitamba Shatakam or Shakti Mahimna Stotram
pdf was typeset on August 8, 2026

Please send corrections to *sanskrit@cheerful.com*